

नूपुर - 2013

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के
120वें जन्मोत्सव पर
स्मारिका-रूप में कतिपय 'नूपुर'



श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट
(श्री म ट्रस्ट)

कार्यालय : 579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ 160 018
फोन 0172-2724460

मन्दिर : श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत पीठ (श्री पीठ)
सैक्टर 19-डी, चण्डीगढ़ 160019

website : <http://www.kathamrita.org>

email : srimatrust@yahoo.com

आवरण चित्र :

श्यामापद आकाशते मन घुड़िखान उड़ितेछिलो ।
 कलुषेर कुवातास पेये गोप्ता खेये पड़े गेलो ॥
 मायाकान्नि होलो भारी, आर आमि उठाते नारि ।
 दारासुत कलेर-दड़ि, फाँस लेगे से फेंसे गेलो ॥
 ज्ञान-मुण्ड गेछे छिंड़े, उठिए दिले अमनि पड़े ।
 माथा नाइ से आर कि उड़े, संगेर छ 'जन जयी होलो ॥
 भक्ति डोरे छिलो बाँधा, खेलते एसे लागलो धांधा ।
 नरेशचन्द्रेर हासा कांदा, ना आसा एक छिलो भालो ॥

— कथामृत 2: 2 : 7

© श्री म ट्रस्ट

सम्पादन : डॉक्टर (श्रीमती) निर्मल मिश्र
 सहयोग— ईश्वर चन्द्र
 प्रकाशन : प्रेसीडेंट
 श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट)
 579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ 160 018
 फोन - 0172-2724460
 मुद्रण : Click Print Shoppe
 Sector-17, Chandigarh
 आवरण : Martin Gemperle, Paris, France

कथामृतकार श्री 'म' की सेवक-सन्तान
स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज को
जो
श्री म दर्शन-ग्रन्थमाला के माध्यम से
श्रीरामकृष्ण-कथा को,
कथामृत में कही-अनकही ठाकुर-वाणी को
हम तक लाए।

‘नूपुर’ नाम क्यों ?

ठाकुर दक्षिणेश्वर में नरेन्द्र, भवनाथ आदि भक्तों के संग में हैं।
ठाकुर गाना गा रहे हैं—

बोल रे श्रीदुर्गा नाम।

(ओरे आमार आमार आमार मन रे)।

...

यदि बोलो छाड़ो-छाड़ो मा, आमि ना छाड़िबो।

बाजन नूपुर होये मा तोर चरणे बाजिबो ॥*

दीदी जी (श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता) कहा करतीं कि ठाकुर-वाणी का अक्षर-अक्षर है ‘नूपुर’। इन ‘नूपुरों’ की झंकार से सब पाठक ठाकुर का शुद्ध प्यार पाएँ, इस अभिलाषा से ही उन्होंने अपने गुरु महाराज के 101वें जन्म-दिन पर सन् 1994 में स्मारिका-रूप में वार्षिक पत्रिका का प्रारम्भ ‘नूपुर’ नाम से किया था। उनका विश्वास था कि ठाकुर-वाणी के पठन-श्रवण-मनन और पालन से व्यक्ति स्वयं बन जाता है माँ के चरणों का ‘नूपुर’।

* ओ मेरे मन, तू दुर्गा-दुर्गा नाम बोल। ... यदि कहो छोड़, छोड़, किन्तु मैं नहीं छोड़ूँगा।
हे माँ, मैं तेरे चरणों का नूपुर बनकर बजूँगा।]

अनुक्रमणिका

| | | |
|--|-----|----|
| निवेदन | ... | 7 |
| 1. आनन्द के विग्रह : श्रीरामकृष्ण | ... | 11 |
| 2. आनन्द में कैसे रहें ?— माँ सारदा | ... | 23 |
| 3. Teachings of Shree M.— how to live joyfully in household life | ... | 29 |
| 4. M. on Spiritual Life | ... | 36 |
| 5. Each is Great in his Own Place (from Swami Vivekanand's Karmayog) | ... | 43 |
| 6. शाश्वत शान्ति-सुख-आनन्द का मन्त्र : आगे ईश्वर, परे सब— स्वामी नित्यात्मानन्द | ... | 51 |
| 7. सुख, शान्ति और आनन्द— श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता | ... | 57 |



श्री 'म' ट्रस्ट

श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत के प्रणेता श्री महेन्द्रनाथ गुप्त, बाद में मास्टर महाशय वा श्री म (M.) के नाम से विख्यात हुए।

इन्हीं श्री म के अन्तरंग शिष्य थे स्वामी नित्यात्मानन्द जो 'श्री म दर्शन' ग्रन्थमाला के प्रणेता हैं। और वे ही हैं श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट) के संस्थापक।

अपने जीवन में ठाकुर-वाणी का अक्षरशः पालन करने वाले श्री म के पास दीर्घकाल तक रहकर स्वामी नित्यात्मानन्द जी को विश्वास हो गया था कि जगत् के सकल काम-काज करते हुए भी मन से ईश्वर के साथ रहा जा सकता है और यही है शाश्वत शान्ति तथा परमानन्द का सहज, सरल उपाय। परमानन्द की प्राप्ति ही है मनुष्य-जीवन का एकमात्र उद्देश्य। इसी परमानन्द की प्राप्ति जन-जन को हो, इस उद्देश्य से स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज ने अपने प्रथम गुरु श्री म की स्मृति में 12 दिसम्बर सन् 1967 को श्री म ट्रस्ट (श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट) को रोहतक में रजिस्टर करा दिया था जो बाद में चण्डीगढ़ ले आया गया। तब से लेकर आज तक ठाकुर-कृपा से ठाकुर-वाणी के प्रचार-प्रसार का कार्य निरन्तर चल रहा है और आगे बढ़ रहा है।

श्री म ट्रस्ट से जुड़े ठाकुर-भक्तों/सेवकों पर ठाकुर इसी तरह अपना शुद्ध प्यार बनाए रखें, यही उनके श्री चरणों में प्रार्थना है।

—प्रेसिडेंट, श्री म ट्रस्ट

निवेदन

प्रत्येक व्यक्ति इस संसार में सुख से, शान्ति से, आनन्द से रहना चाहता है। पर अनुभव कहता है कि यह संसार तो अनित्य है, सर्वदा परिवर्तनशील है, यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं। न सदा बचपन रहता है, न जवानी। बुढ़ापा सदा दुःखदायी और मृत्यु हर वक्त तैयार— कब आ जाए, पता नहीं। माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र-कन्या, भाई-बन्धु आदि सभी रिश्ते, धन-बल, मान-यश, पदवी आदि एक भी तो स्थायी नहीं होते और फिर लाख यत्न करने पर भी मनोनुकूल कहाँ? ये सब मेरे बने रहें, मेरे अनुसार चलें, हर समय यही कामना और इसी के लिए चेष्टा। इनमें से एक के भी प्रतिकूल होने पर मन में दुःख, घोर निराशा।

निर्जन में रहने से मनुष्य विचार कर सकता है कि घर-परिवार, नौकरी, रूपया-पैसा, पदवी, यौवन— सभी तो अनित्य हैं, अस्थायी हैं— दो दिन के हैं— आज हैं, कल नहीं।

इस संसार में रहते हुए प्रत्येक को संसार की इस सत्यता का कम, अधिक मात्रा में बोध हो ही जाता है। पर रहना भी इसी संसार में है। अब प्रश्न होता है कि इसी संसार में रहते हुए कैसे दुःख दुःख न लगे और मन का सुख-शान्ति-आनन्द सदा-सर्वदा बना रहे।

ठाकुर कहते हैं, उपाय है। उपाय है— निर्जनवास और सत्-असत् विचार। निर्जनवास अर्थात् बीच-बीच में समय निकाल कर घर-परिवार से दूर जाकर अकेले में रहो। वहाँ जाकर संसार की असारता के विषय में चिन्तन करो। विचार करो, मेरी यह देह जो मुझे इतनी प्रिय है, हाड़-मांस-मलमूत्र से ही तो भरी है। फिर कब तक यह मेरी रहेगी। इसका कब अन्त हो जाए, कुछ ठीक नहीं। फिर सोचो, जिनके साथ मैं रह रहा हूँ, वे क्या सचमुच मेरे हैं? क्या वे सभी स्वार्थवश ही तो मुझे प्यार नहीं करते? और फिर ये क्या सदा मेरे साथ रहेंगे? क्या पता कब मैं ही इन्हें छोड़ कर चल दूँ? ऐसा विचार करते-करते मन में पक्का विश्वास हो जाएगा कि ईश्वर ही एकमात्र मेरा अनन्तकाल का बन्धु है, सखा है, माता-पिता है।

निरन्तर चिन्तन का परिणाम यह होगा कि धीरे-धीरे संसार से, घर-परिवार से मोह, आसक्ति कम होकर मन ईश्वर की ओर मुड़ने लगेगा।

जब बाहरी विषयों की ओर आकर्षण कम होगा तो प्रभु की ओर खिंचाव बढ़ेगा। फिर चिन्तन होगा मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है, जन्म-मृत्यु क्या है। इन सबके चिन्तन से चित्त की शुद्धि होने लगती है, मनुष्य का कर्ताभाव— 'मैं' कम होने लगता है। उसे समझ में आने लगता है कि समस्त दुःखों का कारण तो यह मैं-मेरा का भाव ही है। फिर एक अजाना शक्ति, ईश्वर के प्रति विश्वास, श्रद्धा बढ़ने लगती है। इसे ही आध्यात्मिक मोड़ कहते हैं।

अब मनुष्य को 'आगे ईश्वर, परे सब' का अर्थ समझ आने लगता है। तदनुसार व्यक्ति जीवन कैसे जिए जिससे वह सदा-सर्वदा सुख, शान्ति और आनन्द में रह सके, इसका उपाय सभी शास्त्रों, सभी महापुरुषों ने अलग-अलग प्रकार से समझाया है।

ठाकुर, श्री श्री माँ, श्री म, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी नित्यात्मानन्द, श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं, आइए देखें नूपुर-2013 में। इनकी बातें पढ़ें, जानें, समझें, जीवन में पालन की

चेष्टा करें जिससे यही 'ज्वलन्त अनल' संसार 'मजार कुटि'— मजे की कुटिया बन जाए।

— डॉ० निर्मल मित्तल

पुनश्च

इस बार के नूपुर का काम सम्भालने के लिए स्वामी नित्यात्मानन्द के मन्त्र शिष्य श्री नौबत जी 5 जून, 2013 को प्रातः ही पहुँच गए, किन्तु तब तक मैं तो 9 दिन की शिव-कथा सुनने ऋषिकेश के लिए निकल चुकी थी। मेरा कार्यक्रम बहुत पहले से निश्चित था। जाना मेरी विवशता रही, पर ठाकुर ने और भी बेहतर-बेजोड़ व्यवस्था कर दी— नौबत जी को भेजकर।

वर्षों तक निरन्तर श्री म ट्रस्ट के साथ जुड़े रहकर नौबत जी ने श्री म दर्शन— हिन्दी (भाग-1 और 3 से 16) तथा श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत (सभी पाँचों भागों) के मुद्रण-प्रकाशन का कार्यभार सहर्ष सम्भाला था।

वर्षों के अन्तराल के पश्चात् इनका पुनः आगमन हुआ। 'नूपुर' में सहायता के साथ-साथ श्री म दर्शन-5 के पुनर्मुद्रण में इनका सहयोग मिलता रहा। इनका हृदय से धन्यवाद!





श्रीरामकृष्ण परमहंस

- ◆ जन्म : 18 फरवरी, सन् 1836 ईसवी।
- ◆ स्थान : कामारपुकुर (हुगली ज़िले का अन्तर्वर्ती ग्राम)
- ◆ माता-पिता : श्रीमती चन्द्रमणि देवी और श्री क्षुदिराम चट्टोपाध्याय (चैटर्जी)।
- ◆ भाई-बहन : दो बड़े भाई, दो बहनें।
- ◆ शिक्षा : कुछ दिन पाठशाला में गए। प्रारम्भ से ही अर्थकरी विद्या से विकर्षण। स्कूल में रुचि नहीं। लेख सुन्दर। अद्भुत स्मरण-शक्ति।
- ◆ विवाह : 22-23 वर्ष की आयु में सन् 1859 में 6-7 वर्षीया सारदा मणि के साथ।
- ◆ दक्षिणेश्वर-वास : बड़े भाई रामकुमार की मृत्यु के बाद दक्षिणेश्वर में पुजारी। बाद में पूजा-कर्म से निवृत्त होकर वहीं दक्षिणेश्वर में स्वतन्त्र वास— प्रायः अन्त समय तक।
- ◆ महासमाधि : 16 अगस्त, 1886 ईसवी।



आनन्द के विग्रह : श्रीरामकृष्ण

इस बार के नूपुर का विषय है—
आनन्द में कैसे रहें ?

मनुष्य आदि काल से सुख की, शान्ति की और अन्ततः आनन्द की प्राप्ति के लिए प्रयास कर रहा है। यह प्रयास अनेक स्तर पर हो रहा है और हुआ है —

- (1) अवतार आते हैं मनुष्य को दुखों से छुटकारा दिलाने के लिए।
- (2) ऋषि-मुनि तपस्या करते हैं, प्रार्थना करते हैं जन-कल्याण के लिए और संग-संग देश-काल, पात्र-परिस्थिति के अनुरूप उपाय भी बताते हैं।
- (3) शिक्षा के क्षेत्र में नई-नई पद्धतियों को देखा, परखा और लागू किया गया। उद्देश्य रहा मन को सही दिशा मिले और भटकन से बच कर समाहित होकर सतत आनन्द का उपभोग करे।
- (4) वैज्ञानिक आविष्कार।
- (5) सद्ग्रन्थों, शास्त्रों के रूप में ईश्वरीय वाणी, ईश्वरीय सिद्धान्तों को हम मनुष्यों के सामने लाना।

हमारे यहाँ, बंगाल में— भारत में सद्यः अवतार के रूप में आए श्रीरामकृष्ण और उनकी वाणी के रूप में आई 'कथामृत' तथा 'कथामृत' की व्याख्या के रूप में आया 'श्री म दर्शन'।

हमारा अनुभव है कि 'कथामृत' और 'श्री म दर्शन' के पठन-श्रवण से— श्रीरामकृष्ण के साक्षात्कार से— अल्पकाल में ही उस सुख, शान्ति और आनन्द को जीवन में प्रत्यक्ष किया जा सकता है, जिसका आज तेज़ी से लोप हो रहा है।

आनन्द के विग्रह —

श्रीरामकृष्ण

सब कुछ होते हुए भी, सभी सुख-सुविधाओं के बावजूद भी हमें प्रायः शान्ति नहीं होती। कोई-न-कोई कमी खटकती रहती है। इसके विपरीत महापुरुषों को हर समय, प्रति पल आनन्द में देखा जाता है। कोई भी स्थिति-परिस्थिति उनके आनन्द को बाधित नहीं कर पाती। वे स्वयं तो आनन्द में रहते ही हैं पर जहाँ वे होते हैं; वहाँ के, अपने आस-पास के, स्थान को भी आनन्द से ओत-प्रोत कर देते हैं। जीवन के दुख-कष्टों से तंग आकर आत्महत्या तक की बात सोचने वाले (श्री म) का मन भी उस महापुरुष को देखकर, उनके आस-पास का स्थान, वातावरण देखकर आनन्द-सागर में अवगाहन करने लगता है और उसका दुख, कष्ट, क्लेश, अवसाद तो एकबारगी भाग ही जाता है। और इस प्रकार उसके मन को किसी भी अप्रिय मरणान्तक संकल्प के बारे में पुनर्विचार का अवसर मिल जाता है, घातक घड़ी टल जाती है।

28 वर्षीय बुद्धिजीवी महेन्द्रनाथ गुप्त के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। विकट घरेलू परिस्थितियों से जूझते हुए आत्महत्या में ही एकमात्र उनका समाधान देखकर वे रात्रि के समय घर से निकल पड़े। ईश्वरेच्छा से तब पत्नी साथ हो ली। पत्नी को लेकर अपनी बहन के घर गए। अगले दिन प्रातः उनका भाँजा सिधु साथ हो लिया। घूमते-घूमते सायं के समय रानी रासमणि के मन्दिर दक्षिणेश्वर पहुँच गए और बाग में सदर फाटक से प्रवेश करके महेन्द्रनाथ गुप्त और सिधु सीधे ही श्रीरामकृष्ण के कमरे में आ गए। उन्होंने देखा, कमराभर लोग निःस्तब्ध होकर उनका कथामृत-पान कर रहे हैं। ठाकुर तख्तपोश पर पूर्वस्य बैठे हुए सहास्यवदन हरि-कथा कह रहे हैं। भक्तगण ज़मीन पर बैठे हुए हैं। मास्टर खड़े हुए अवाक् होकर देख रहे हैं। उन्हें बोध हुआ :

जैसे साक्षात् शुकदेव भागवत-कथा कह रहे हैं और वहाँ सर्वतीर्थों का

समागम हुआ है। अथवा जैसे श्री चैतन्य पुरी-क्षेत्र में रामानन्द, स्वरूप आदि भक्तों के संग बैठे हुए हैं और भगवान का नाम-गुण-कीर्त्तन कर रहे हैं।

मास्टर अवाक् होकर देखते-देखते सोचते हैं—

आहा! कैसा सुन्दर स्थान! कैसा सुन्दर मनुष्य! कैसी सुन्दर कथा! यहाँ से हिलने की इच्छा नहीं होती।

निराश-हताश मास्टर की आँखों ने देखा श्रीरामकृष्ण के चेहरे पर भगवदीय आनन्द! उनके अपने हृदय में भी वह आनन्द संचारित हो गया। उनके निराश मन में जैसे आशा का ज्वार आ गया। उनके मन में आया— एक बार देख तो लूँ कहाँ पर आया हूँ। मास्टर उठे और वहाँ के मन्दिरों की आरती देखी। निश्चित ही उनके मन में और स्थिरता आई होगी। अब उसी स्थिर मन से वे दोबारा श्रीरामकृष्ण के कमरे में आए। कमरे का द्वार ढका हुआ था। बाहर दासी वृन्दे बैठी थी। उससे पूछने पर मास्टर को पता चला—

— ठाकुर तो यहाँ बहुत दिनों से हैं।

— ये किताबें-शिताबें नहीं पढ़ते। ये सब तो इनके मुख में हैं।

‘ठाकुर श्रीरामकृष्ण पुस्तकें पढ़ते ही नहीं’, सुनकर मास्टर और भी अवाक्! वे तो यही मानते आए हैं कि पुस्तकें पढ़ने-लिखने से ही ज्ञान होता है। दासी वृन्दे के कहने पर मास्टर ने कमरे में प्रवेश किया। फिर हाथ जोड़कर प्रणाम किया। ठाकुर श्रीरामकृष्ण से बैठने की अनुमति पाकर वे और सिधु जमीन पर बैठ गए। ठाकुर के पूछने पर मास्टर ने अपना समस्त परिचय दे दिया। किन्तु देखने लगे—

ठाकुर बीच-बीच में अन्यमनस्क हो रहे हैं। (पीछे सुना इसी का नाम भाव है। ...पीछे फिर सुना और देखा, ठाकुर का सन्ध्या के पश्चात् इसी प्रकार का भावान्तर प्रायः हो जाता है।)

मास्टर लौटते समय सोचने लगे—

ये सौम्य कौन हैं, जिनके पास से लौट कर जाने की इच्छा नहीं हो

रही! पुस्तक बिना पढ़े क्या मनुष्य महत् होता है? कैसा आश्चर्य!
फिर दोबारा आने की इच्छा हो रही है! इन्होंने भी कहा है, आबार
ऐशो (फिर आइयो)। कल या परसों प्रातः आऊँगा।

दूसरी बार मास्टर प्रातः आठ बजे ठाकुर के पास पहुँच गए। ठाकुर ने स्वागत
किया। एक दो सामान्य से परिचयात्मक प्रश्नों के बाद ठाकुर ने पूछा :

“हाँ जी, केशव कैसा है? बड़ा बीमार हुआ था...”

मास्टर— जी, मैंने भी सुना तो था, अब शायद ठीक है।

श्रीरामकृष्ण— मैंने फिर केशव के लिए माँ के निकट नारियल और
चीनी की मन्त्रत मानी थी। पिछली रात को नींद टूट जाती, और माँ के
पास रोया करता और कहता, माँ! केशव का रोग ठीक कर दो।
केशव के न रहने पर, मैं कलकत्ता जाकर किसके संग बातें करूँगा?
तभी डाब-चीनी की मन्त्रत मानी थी।”

अब ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने कुक साहब के बारे में पूछा। केशव ठाकुर को और
कुक साहब को जहाज पर लेकर गये थे। कुक साहब की बात केशव के
सन्दर्भ में ही की।

केशव उन दिनों बंगाल के युवाओं के आकर्षण का केन्द्र थे। साथ-
साथ सम्भ्रम/बुद्धिजीवी समाज में भी उनका वर्चस्व था। केशव की बात के
बाद ठाकुर ने हठात् कहा :

प्रताप का भाई आया था। यहाँ पर कई दिन तक था। काज-कर्म
नहीं। कहता था, मैं यहाँ पर रहूँगा। स्त्री, पुत्र, कन्या— सबको
ससुराल में छोड़ आया है। बहुत-से बच्चे हैं। मैंने डाँटा, देखो तो
लड़के-बच्चे हुए हैं। उन्हें क्या फिर उस मोहल्ले के लोग खिलाएँगे,
पिलाएँगे, बड़ा करेंगे? लज्जा नहीं आती कि स्त्री-बच्चों को कोई
और खिलाता है, और उन्हें ससुराल में डाल रखा है। मैंने खूब
डाँटा और काज-कर्म खोजने के लिए कहा। तब फिर कहीं यहाँ से

जाने को हुआ।

कथामृत के सामान्य पाठक को लगता है कि ठाकुर ने बिना किसी प्रसंग के प्रताप के भाई की बात क्यों कही? पर अन्तर्यामी ठाकुर तो बिना जनाए ही जान गए थे, 'यह (मास्टर) आत्म-हत्या के विचार से घूम रहा है।' प्रताप के भाई की बात उठाकर ठाकुर ने मास्टर को उनका कर्तव्य बताकर उनकी आत्महत्या सम्बन्धी सोच पर एक ओर तो एकाएक प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया और दूसरी ओर, निराश-हताश जीव को अपना अन्तर्यामी-रूप दिखा कर आश्वस्त भी कर दिया। साथ ही ठाकुर और अधिक जानकारी के लिए मास्टर से सामान्य जन की न्यार्यीं अनेक बातें पूछ रहे हैं :

- क्या तुम्हारा विवाह हो गया है ?
- क्या तुम्हारे बच्चे हुए हैं ?
- अच्छा, तुम्हारी पत्नी कैसी है ? विद्याशक्ति कि अविद्याशक्ति ?
- तुम्हारा साकार पर विश्वास है कि निराकार पर ?

प्रश्न व्यक्तिगत भी हैं और धर्म-जीवन से सम्बन्धित भी। ठाकुर और मास्टर के बीच का सारा वार्तालाप बड़ा ही रोचक है, साथ ही आँखें खोल देने वाला भी। ठाकुर के मुख से मास्टर महाशय ने सुना कि

- ईश्वर निराकार है, यह भी सत्य है और ईश्वर साकार है, यह भी सत्य है।
- जो मिट्टी की मूर्ति के रूप में ईश्वर की पूजा करते हैं, ईश्वर उनकी उसी पूजा से प्रसन्न होते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि मिट्टी की मूर्ति की पूजा में उन्हें ही तो पुकारा जा रहा है।

समस्त वार्तालाप के बाद, ठाकुर की बातें सुनने के बाद, अध्ययनशील व चित्त के विश्लेषक और अध्यापन-कार्य में अपने समय के सुख्याति-प्राप्त मास्टर सोचते हैं—

ये जो कह रहे हैं, वही तो ठीक है। ये जो-जो बातें कह रहे हैं, मन

में खूब लग रही हैं।

अब वे श्रीरामकृष्ण से चार प्रश्न पूछते हैं :

- ईश्वर में मन कैसे हो ?
- गृहस्थ में किस प्रकार रहना होगा ?
- क्या ईश्वर का दर्शन किया जाता है ?
- कैसी अवस्था में उनका दर्शन होता है ?

ठाकुर के युक्तियुक्त उत्तरों से मास्टर की सोच को, उनके मन को, एक नई दिशा मिल गई। सोचने-विचारने, मनन और विश्लेषण करने के लिए एक गहन विषय मिल गया। पारिवारिक अशान्ति एक ओर पड़ी रह गई। वे अपने को एक अपूर्व सुख, शान्ति और आनन्द के राज्य में महसूस करने लगे।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने के समय से वे सर्वक्षण उनका ही चिन्तन करते। सर्वदा ही जैसे वही आनन्दमय मूर्ति देख रहे हैं और उनकी वही अमृतमयी कथा सुन रहे हैं। विचार करने लगे, 'दरिद्र एवं प्रायः निरक्षर इस ब्राह्मण ने किस प्रकार इस सारे गम्भीर तत्त्व का अनुसन्धान किया है और जाना है। इतने सहज में ये समस्त बातें समझाते हुए तो उन्होंने अब तक किसी को भी नहीं सुना-देखा। कब उनके पास जाएँगे तथा फिर उनके दर्शन करेंगे'— यही चिन्तन रात-दिन चलता है।

...

तीसरी बार मास्टर 5 मार्च को सायं चार बजे नेपाल बाबू के साथ ठाकुर के पास पहुँचे। इस बार उन्होंने देखा कि ठाकुर भक्तों के संग सहास्यवदन बातें कर रहे हैं। उन्होंने अनेक विषयों पर चर्चा सुनी :

- सर्वभूतों में नारायण
- दुष्ट लोगों के हाथ से अपनी रक्षा हेतु तमोगुण-प्रदर्शन
- चार प्रकार के जीव
- संसारी जीव के लिए उपाय

- नरेन्द्र का व्यक्तित्व
- अंग्रेज़ी में न्याय शास्त्र

प्रायः एक घण्टे के बाद सभा भंग हो गई। भक्त इधर-उधर टहल रहे हैं। मास्टर भी पंचवटी इत्यादि स्थानों पर टहल रहे हैं। आध्यात्मिक और जागतिक जीवन में किस तरह रहना चाहिए, दिन-प्रतिदिन का हमारा व्यवहार कैसा हो— इन जटिल प्रश्नों का सरल और समीचीन उत्तर पाकर मास्टर और अधिक आश्वस्त हुए। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीरामकृष्ण के कमरे की ओर आकर कुछ और भी देखा— कुछ ऐसा जो उनकी कल्पना में, हम सभी की कल्पना में, सहज में नहीं आ सकता। वह अभूतपूर्व दृश्य जिसका संकेत शास्त्रों में तो भले ही होगा; पर उसका सजीव चित्रण अर्जुन को हुए विराट रूप दर्शन के चित्रण के समान दुर्लभ है। तो भी मास्टर ने इसे चित्रित करने का प्रयास किया है। इस चित्र को देखकर जगत के सुख-दुख भूलकर द्रष्टा केवल आनन्द की कल्पना एवं अनुभूति ही करता है :—

श्रीरामकृष्ण स्थिर हुए खड़े हैं। नरेन्द्र गाना गा रहे हैं। दो-चार जन भक्त खड़े हुए हैं। मास्टर गाना सुनकर आकृष्ट हुए। ठाकुर के गाने के अतिरिक्त ऐसा मधुर गाना उन्होंने कभी भी, कहीं भी नहीं सुना था। हठात् ठाकुर की ओर दृष्टिपात करते ही वे अवाक् हो गए।

ठाकुर खड़े हुए हैं— निस्पन्द, पलकें हिलती नहीं, निःश्वास-प्रश्वास चल रहा है कि नहीं, यह भी पता नहीं चल रहा!

पूछने पर एक भक्त ने कहा, इसका नाम समाधि है। मास्टर ने इस प्रकार कभी देखा भी नहीं था, सुना भी नहीं था। अवाक् होकर वे सोचने लगे,

भगवान का चिन्तन करते हुए मनुष्य क्या इतना बाह्यज्ञान-शून्य हो जाता है? न जाने कितना अधिक भक्ति-विश्वास होने पर इस प्रकार होता है!

समाधि और प्रेमानन्द की यह अद्भुत छवि हृदय में ग्रहण करके मास्टर घर

लौटने लगे। बीच-बीच में हृदय के बीच उसी हृदयोन्मत्तकारी मधुर संगीत का स्फुरण उठने लगा—

प्रेमानन्दरसे होओ रे चिरमगन (हरि-प्रेम-रस में चिरमग्न हो जाओ)।

मास्टर का ठाकुर श्रीरामकृष्ण से साक्षात्कार 26 फरवरी, 1882 को हुआ था। उस दिन तो उन्होंने ठाकुर की झलक ही पाई थी। उसके बाद वे तीन बार और ठाकुर के पास गए। अन्तिम नौवें दिन 6 मार्च को ठाकुर के पास गए— जैसे वह हो 'नवाह्न पारायण' के भोग का दिन। 26 फरवरी से वे निरन्तर श्रीरामकृष्ण-चिन्तन में, श्रीरामकृष्ण-भाव में रहे। नौ दिन की अवधि का यह अन्तिम दिन। मास्टर आज ठाकुर के साथ बिताए पिछले तीन दिनों का विश्लेषण स्वयं कर रहे हैं— अभूतपूर्व सुख, शान्ति और आनन्द लाभ कर रहे हैं। इस विश्लेषण से हम भी उसी सुख, शान्ति, आनन्द का उपभोग कर रहे हैं। इसे प्राप्त करने के समस्त सरल और सुगम उपाय ठाकुर ने असल में तो दो दिन में ही बता दिए हैं।

मास्टर ने आज प्रायः दो-ढाई घण्टे ठाकुर के पास बिताए। तीन बजे दोपहर के समय वे आज फिर आ उपस्थित हुए। मास्टर को घर में प्रवेश करते हुए देखकर ठाकुर उच्च हास्य करके लड़कों से कह उठे,

‘भई लो, फिर आ गया!’ सब हँसने लगे।

मास्टर आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम करके बैठ गए। पहले तो हाथ जोड़कर खड़े होकर प्रणाम किया करते थे, अंग्रेजी पढ़ा-लिखा जन जैसे करता है। किन्तु आज उन्होंने भूमिष्ठ होकर प्रणाम करना सीखा है।

उनके आसन ग्रहण कर लेने पर, श्रीरामकृष्ण क्यों हँस रहे थे— वही नरेन्द्र आदि भक्तों को समझाते हैं,

“देखो, एक मोर को चार बजे दोपहर को अफ्रीम खिला दी थी। उसके दूसरे दिन ठीक चार बजे वही मोर आ उपस्थित हुआ— अफ्रीम का मोहताज हो गया है, ठीक समय अफ्रीम खाने आया है।”

(सब का हास्य)।

मास्टर मन-मन में सोच रहे हैं, 'ये ठीक बात ही कर रहे हैं।

घर जाता हूँ, किन्तु दिन-रात इनकी ओर ही मन पड़ा रहता है— कब देखूँगा! कब देखूँगा!! यहाँ पर कोई शक्ति खींच लाती है। मन होने पर भी अन्यत्र नहीं जाया जाता!'

इधर ठाकुर लड़कों के संग अनेक हँसी-मजाक करने लगे मानो इनके समवयस्क हों। हँसी की लहर बढ़ने लगी और आनन्द की हाट लग गई।

मास्टर अवाक् होकर इसी अद्भुत चरित्र को देख रहे हैं। सोच रहे हैं, 'क्या इनकी ही पिछले दिन (कल) समाधि और अदृष्टपूर्व प्रेमानन्द देखा था? वही व्यक्ति ही क्या प्राकृत (साधारण) जन की न्यार्याँ व्यवहार कर रहा है? इन्होंने ही क्या प्रथम दिन उपदेश देने के समय मेरा तिरस्कार किया था? इन्होंने ही क्या 'साकार-निराकार दोनों ही सत्य हैं', कहा था? इन्होंने ही क्या मुझसे कहा था कि ईश्वर ही सत्य है और संसार का समस्त ही अनित्य है? इन्होंने ही क्या मुझसे संसार में दासी की भाँति रहने के लिए कहा था?'

अपने इन विचारों की उधेड़-बुन में खोए सत्ताईस वर्षीय मास्टर फिर से पहले जैसा अभूतपूर्व दृश्य देखने लगे, 'आनन्द' को सघन-मूर्तिमान होते देखने लगे—

ठाकुर यही गाना गा रहे हैं। और फिर वही 'समाधि'! फिर निस्पन्द स्थिर देह, स्तिमित लोचन। बैठे हुए हैं, जैसे फोटोग्राफ में छवि दिखाई देती है। भक्तगण अभी-अभी इतनी हँसी-खुशी कर रहे थे, अब सब ही एक दृष्टि से ठाकुर की उसी अद्भुत अवस्था का निरीक्षण कर रहे हैं। समाधि-अवस्था का मास्टर ने यह द्वितीय बार दर्शन किया है। अनेक क्षण पश्चात् उस अवस्था का परिवर्तन होने लगा। देह शिथिल हो गई। मुख सहास्य हो गया। इन्द्रियाँ फिर दोबारा अपना-अपना कार्य करने लगीं। चक्षुओं के कोनों से आनन्दाश्रु

विसर्जन करते-करते ठाकुर 'राम! राम!!' —यह नाम उच्चारण करते करते-करते क्रमशः भौतिक जगत में उतरने लगे!

मास्टर सोचने लगे, यही महापुरुष ही क्या लड़कों के संग हँसी-मजाक कर रहे थे? तब तो ये थे बिल्कुल मानो पाँच वर्ष के बालक!

26 फरवरी, 1882 से 6 मार्च, 1882 तक नौ दिनों की अल्प अवधि में श्रीरामकृष्ण ने मास्टर को और मास्टर के माध्यम से हम सबको अपना ईश्वरत्व, अवतारत्व दिखा दिया, उसका स्पर्श करा दिया। और तो और, जीवन से निराश, श्रान्त, क्लान्त तथा आत्महत्या की सोच से निकले मास्टर को ही अपने कथामृत का संवाहक भी बना लिया! यह अद्भुत प्रभाव सत्संग का है। सत्संग अर्थात् सत्य के साथ संग। और सत्य है केवल ईश्वर, ईश्वर की वाणी और उस वाणी के लिए अपेक्षित ग्रहण शक्ति। इस ग्रहण शक्ति को पाना है हमें अपने ही प्रयास द्वारा, अपनी ही चेष्टा द्वारा। नौ दिनों की इस अल्प अवधि में ही ठाकुर ने मास्टर को, उनकी धात को, समझ लिया। परीक्षण के लिए वे (श्रीरामकृष्ण) मास्टर से पूछ भी लेते हैं—

“मुझमें तुम्हें क्या बोध होता है?”

मास्टर चुप रहे।

ठाकुर फिर कहते हैं—

“तुम्हें कैसा लगता है, मुझे कितने आने ज्ञान हुआ है?”

मास्टर— 'आना' यह बात तो नहीं समझ सकता, तो भी ऐसा ज्ञान, प्रेम, भक्ति वा विश्वास वा वैराग्य वा उदार भाव कभी भी, कहीं भी नहीं देखा।

ठाकुर हँसने लगे। अर्थात् स्वयं को पहचनवा कर आश्वस्त हो गए।

जिस प्रकार मोक्ष-कामी जन
 रामायण आदि ग्रन्थों के नवाह्न पारायण से,
 भागवत आदि ग्रन्थों के सप्ताह पाठ से,
 अपने को कृतकृत्य समझते हैं
 तो क्या हम अपने वर्तमान की, दैनिक जीवन की
 समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए
 कथामृत का सप्ताह-पाठ नहीं कर सकते ?

मोक्ष क्या है ?— दैनिक जीवन की समस्याओं का समाधान और
 समस्याओं का समाधान ही है— सुख-शान्ति और आनन्द।

26 फरवरी से 6 मार्च तक के नौ दिनों में मास्टर चार बार ठाकुर से
 मिलने गए। इन चार दिनों में ठाकुर के क्रिया-कलापों का, उनकी वाणी का
 मास्टर ने हू-ब-हू चित्रण किया है करीब 25-30 पृष्ठों में (कथामृत प्रथम
 भाग के प्रथम खण्ड के 2 से 10 तक नौ परिच्छेदों में।) क्या सुयोग!— नौ
 दिन और नौ परिच्छेद!

यह सर्वानुभूत तथ्य है कि उपर्युक्त नौ दिनों में 4 दिन की वाणी, और
 उन दिनों के क्रिया-कलापों का चित्रण करते ये 25-30 पृष्ठ हमारी सभी
 जिज्ञासाओं को शान्त कर देते हैं, हमारी सभी समस्याओं का समाधान देते हैं
 और फलस्वरूप हमें अनायास ही उपलब्ध हो जाता है— सुख, शान्ति और
 आनन्द। अतः निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि उपर्युक्त
 मास्टर-ठाकुर के चार सम्पर्कों के विवरण का पठन-मनन-विश्लेषण प्रत्येक
 सुखान्वेषी मनुष्य के जीवन में शाश्वत शान्ति, आनन्द का अजस्र अवतरण
 करने की क्षमता रखता है क्योंकि सद्गृहस्थ की ऐसी कोई समस्या नहीं हो
 सकती जिसका समाधान उक्त विवरण में न हो।

प्रस्तुति : डॉ० नौबत राम भारद्वाज



माँ सारदा

- ◆ जन्म : 22 दिसम्बर, सन् 1853 ईसवी।
- ◆ स्थान : जयराम बाटी (कामारपुकुर से 4 मील और दक्षिणेश्वर से 60 मील की दूरी पर)।
- ◆ माता-पिता : श्रीमती श्यामा सुन्दरी और श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय।
- ◆ भाई-बहन : चार छोटे भाइयों की बहन।
- ◆ विवाह : 6-7 वर्ष की अल्पायु में सन् 1859 में 22-23 वर्षीय ठाकुर रामकृष्ण के साथ।
- ◆ दक्षिणेश्वर-वास : प्रथम बार सन् 1872 में गंगा-स्नान के लिए जा रहे यात्री-दल के साथ 60 मील पैदल चल कर दक्षिणेश्वर पहुँचीं। बाद में वे आवश्यकतानुसार कभी दक्षिणेश्वर, कभी जयराम बाटी रहती रहीं। ठाकुर के देहावसान के पश्चात् वे प्रायः कोलकता रहा करतीं।
- ◆ महासमाधि : कोलकता में 21 जुलाई, सन् 1920 ईसवी को रात्रि डेढ़ बजे।



2

आनन्द में कैसे रहें ?

—माँ सारदा

माँ सारदा श्रीरामकृष्ण के सिद्धान्तों का मूर्त विग्रह हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, माँ ने उन्हें अपने जीवन में जिया, उन्हें व्यावहारिक रूप दिया। नित्यप्रति के जीवन में उन सिद्धान्तों को कैसे जिया जा सकता है, माँ ने अपने जीवन में दिखाया। तभी तो माँ का जीवन एक सामान्य गृहस्थ के लिए ही नहीं बल्कि कठोर नियमों का पालन करने वाले संघ-संन्यासियों के लिए भी आदर्श हो गया, अनुकरणीय हो गया।

ठाकुर अपने जीवन-काल में संसार-ताप से तप्त अनेकों को ही माँ के पास भेजा करते— उनकी दिनचर्या, उनकी जीवन-शैली से कुछ सीखने व माँ के उपदेश, उनकी बातें सुनने। और ठाकुर की देहत्याग के बाद तो माँ सारे संघ की कर्णधार बनीं, संघ-जननी बनीं। ‘श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत’ के रचयिता श्री म जैसे आदर्श गृहस्थी हों अथवा विश्वविख्यात स्वामी विवेकानन्द जैसे संन्यासी— सभी ने समय-समय पर माँ से मार्गदर्शन पाया, अपनी जिज्ञासाओं का उत्तर पाया। स्वयं श्रीरामकृष्ण ने उनके विषय में कहा था— “...वह सरस्वती है, ज्ञान देने आई है।”

माँ की बातों ने संसार-ताप से दग्ध अनेकों के मन-प्राण को शीतल किया। पापी-तापी, अज्ञानी-ज्ञानी, गृही-संन्यासी, जो भी माँ के पास आया, उसका उद्धार हुआ। माँ के सरल, शुद्ध, निश्छल, निष्कपट, पावन व्यवहार का प्रभाव ही ऐसा था कि उनके पास आने वाले प्रत्येक जन को लगता 'माँ' उसकी अपनी माँ है। अपनी समस्या के समाधान हेतु माँ के पास आए जनों के, जिज्ञासु भक्तों के प्रश्नों के उत्तर माँ अपनी सरल, सुबोध, हृदयग्राही शैली में देतीं। उनका जोर 'पालन' पर, 'प्राैक्टीकल' पर रहता। निज-निज कर्म में रत रहते हुए धर्मजीवन-यापन से ही व्यक्ति के दुखों का अन्त सम्भव है और यही है आनन्द का उपाय भी— माँ ने निज जीवन में इसे ही जिया और यही सिखाया, यही ज्ञान बाँटा। माँ अपने पास आने वालों से यह भी कहतीं— यदि शान्ति चाहते हो तो निरन्तर जप-ध्यान करो, उनके (ठाकुर के) प्रति शरणागति का भाव रखो।

आध्यात्मिक शान्ति के लिए उनके पास गृहस्थ, संन्यासी सब ही आते रहते। ऐसे कुछ जनों ने माँ के साथ हुई अपनी बातों को डायरीबद्ध करके रख लिया था। माँ की उन्हीं बातों का संकलन बंगला में 'मायेर कथा' नाम से प्रकाशित हुआ। इसका हिन्दी-अनुवाद रामकृष्ण मठ, प्रयाग के अध्यक्ष स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया जो 'माँ की बातें' नाम से रामकृष्ण मठ, नागपुर द्वारा प्रकाशित हुआ। निम्नलिखित बातें उसी पुस्तक में से हैं :

- ...जिसके प्रति जो कर्तव्य है, वह किए जाना लेकिन प्रेम एक भगवान को छोड़कर अन्य किसी से मत करना। प्रेम करने से बहुत दुख उठाना पड़ता है।
- “...बेटा, संसार महा दलदल है, दलदल में फँसने से निकलना मुश्किल

है। ब्रह्मा-विष्णु सांसत में आ जाते हैं, फिर मनुष्य की क्या बिसात है! उनका नाम लेना। नाम लेते-लेते वे ही एक दिन (बन्धन) काट देंगे। उनके बिना काटे क्या कोई उपाय है बेटा? उनमें खूब विश्वास रखना। संसार में जैसे माँ-बाप बच्चों के आश्रयस्थल हैं, वैसे ही ठाकुर को समझना।...

- “माँ, मनुष्य और देवता में अन्तर क्या है?”
मनुष्य ही देवता बनता है। कर्म करने से सब कुछ सम्भव है।
किस तरह का कर्म?
ईश्वरीय विधिनिषेध मानते हुए अभीष्ट देवता के प्रति निष्ठा रखकर उन्हें पुकारने से सब कुछ हो जाता है।

— ‘माँ की बातें’ पृष्ठ 59, 90, 164 से

माँ सारदा के 150वें जन्मवर्ष (सन् 2004) पर रामकृष्ण मठ, अल्सूर, बेंगलूर के अध्यक्ष स्वामी राघवेशानन्द द्वारा संकलित एवं प्रकाशित पुस्तिका ‘जप और ध्यान’ को नूपुर-2006 में भी दिया गया। निम्न पंक्तियाँ वहीं से :

- जैसे हवा बादलों को हटा देती है, वैसे ही भगवान का नाम सांसारिकता के बादलों को नष्ट कर देता है।
- कर्म का फल अनिवार्य है। पर भगवान के नाम के प्रभाव से उसकी तीव्रता कम की जा सकती है। यदि तुम्हारे भाग्य में पैर का कटना लिखा हो, तो पैर में काँटा चुभ कर रह जाएगा। जप-तप के द्वारा कर्मफल को बहुत कुछ काटा जा सकता है।
- जिसे पूजा-अर्चना का निरन्तर अभ्यास हो जाए वह जीवन की सभी समस्याओं को सरलता से पार करते हुए शान्त रहेगा और सांसारिक दुविधाओं से विचलित नहीं होगा।

- ध्यान, जप और आध्यात्मिक विचारों से पुराने पाप कट जाते हैं।

— नूपुर-2006, पृष्ठ 21, 22, 25 से

‘वेदान्त केसरी’, सितम्बर 2004 में प्रकाशित स्वामी प्रभानन्द जी के अंग्रेजी लेख ‘Holy Mother : The Guardian Angel of the Kathamrita’ का हिन्दी अनुवाद नूपुर-2007 में दिया गया। निम्न पंक्तियाँ वहीं से :

- ... जब-जब महेन्द्र (श्री म) किसी कठिन स्थिति में होते, तब-तब वे अपनी समस्या के समाधान के लिए श्री श्री माँ के पास जाते और माँ हमेशा उनका उचित मार्गदर्शन करतीं, उन्हें परामर्श देतीं। और, श्री श्री माँ से मार्गदर्शन पाते समय महेन्द्र माँ के जीवन-दर्शन से प्रभावित होते ही। श्री श्री माँ का सम्पूर्ण जीवन ही नित्य (अविनाशी) आनन्द की खोज में अपने सभी बच्चों का मार्गदर्शन करने के लिए सम्पूर्णतया समर्पित था। एक बार उन्होंने महेन्द्र को लिखा था :

‘मेरे बच्चे, तुमने निष्काम कर्म के बारे में लिखा है। परन्तु मन में वह इच्छा भी न रखना ही भला है। कोई भी इच्छा रखने से तुम्हें पुनः (इस संसार में) आना पड़ेगा— मैंने उन्हें (ठाकुर को) ऐसा कहते सुना है और फिर, तुमने तो उन्हें देखा भी है। तुम्हें फिर भय क्या?... तुमने अपनी इच्छा आदि के विषय में लिखा है। उसके लिए तुम भगवान से प्रार्थना करो। तुम जो भी माँगो, उसके लिए बार-बार कहना जरूरी नहीं है। एक बार माँगने से ही हो जाएगा। ठाकुर ने मुझे यह बता दिया था। प्रारब्ध कर्मों का क्षय हो जाने पर फिर कर्म की इच्छा ही न रहेगी। तब केवल उनका स्मरण और ध्यान। उन्हें पुकारो, कहो, “मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे हो”।...’

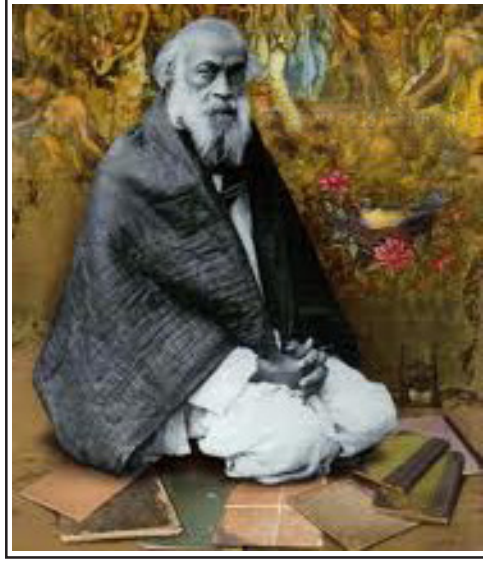
नूपुर-2010 में छपे लेख 'सारं ददाति इति सारदा' में से :

- ...हम देखते हैं माँ दिनभर कार्यरत रहते हुए भी आनन्द में हैं। हम क्यों नहीं? माँ में असीम शान्ति है, हममें क्यों नहीं? विचार करने पर हमें मालूम होगा कि हम कर्म तो करते हैं पर उस कर्म के साथ हमारा योग नहीं होता। हमारा कर्म कर्मयोग नहीं होता।

माँ का वैशिष्ट्य है माँ का कर्मयोग। गीता में बताए कर्मयोग का, श्रीरामकृष्ण के सिद्धान्तों का माँ जीवन्त उदाहरण हैं। कर्मयोग में महत्त्वपूर्ण है कर्म को करने का दृष्टिकोण। जब तक कर्म में अहंभाव रहे, 'मैं करता हूँ', यह भावना रहे, फल-प्राप्ति की इच्छा रहे, काम से नाम-यश की भावना रहे, तब तक कर्म कर्मयोग नहीं बनता। स्वार्थ-भाव से किए जाने वाले कर्म कितने भी महान क्यों न हों, उनसे कभी मनस्तोष नहीं हो सकता।

दरअसल माँ चौबीसों घण्टे मात्र कर्म में ही व्यस्त नहीं हैं। कर्म के साथ-साथ वे विधिवत् जप भी करती हैं। यूँ काम के समय भी माँ का जप भीतर ही भीतर चलता ही रहता है। समस्त समय जपमय! फिर भी प्रातः तीन बजे उठ कर जप करती हैं। लाख-लाख जप करती हैं। उन्होंने स्वयं कहा है— "काम करने से मन ठीक रहता है। पर जप-ध्यान-प्रार्थना आदि की भी विशेष आवश्यकता है।... काम-काज के साथ यदि जप-ध्यान न करोगे तो यह कैसे समझोगे कि तुम उचित दिशा में जा रहे हो या अनुचित?"

प्रस्तुति : डॉ० निर्मल मित्रल



श्री म (मास्टर महाशय)

- ♦ पूरा नाम : श्री महेन्द्रनाथ गुप्त
- ♦ जन्म : शुक्रवार, नाग पञ्चमी, 31वाँ आषाढ़, 14 जुलाई, 1854 ईसवी।
- ♦ स्थान : कोलकता में शिमुलिया मोहल्ले की शिवनारायण दास लेन।
- ♦ माता-पिता : श्रीमती स्वर्णमयी देवी और श्री मधुसूदन गुप्त— वैद्य ब्राह्मण वंश।
- ♦ भाई-बहन : 4 भाइयों और 4 बहनों में तीसरी सन्तान।
- ♦ विवाह : सन् 1873 में श्रीमती निकुञ्ज देवी के साथ।
- ♦ शिक्षा :
 - ♦ सन् 1867 में आठवीं कक्षा से डायरी लेखन।
 - ♦ हेयर स्कूल से दसवीं की परीक्षा में द्वितीय स्थान।
 - ♦ गणित का एक पेपर न दे सकने पर भी एफ.ए. में 5वाँ स्थान।
 - ♦ सन् 1875 में प्रेजिडेंसी कॉलेज से बी.ए. में तृतीय स्थान।
 - ♦ पूर्वी और पश्चिमी विद्याओं में निपुणता।
- ♦ गुरु : श्रीरामकृष्ण परमहंस
- ♦ गुरु-लाभ : 26 फरवरी, सन् 1882 को रविवार के दिन।
- ♦ महासमाधि : शनिवार, 4 जून, सन् 1932 ईसवी को प्रातः 5.30 बजे।



TEACHINGS OF SHREE M.
— how to live joyfully
in household life

Shree Ramakrishna had prepared Shree M., or Shree Mahendranath Gupta, an ideal householder. Shree M. followed the teachings of his guru in his life and also made his disciples to follow them to enjoy eternal joy and happiness. Below are few excerpts from : M., the Apostle & the Evangelist, Volume 1, pinpointing the techniques that he taught to devotees who flocked to him. He instructed them to keep their minds in God, and also taught them how to lead a life in the world when you have to deal with so many different kinds of personalities.

1. Repeat God’s name like tick-tick of a clock

– 27 March 1923, Chapter 15

“Repetition of God’s name should be constant – like the tick-tick of a watch. No movement of the lips, just mental *japa*. In between all works, whenever the leisure, it should be spent in *japa*

...

If one postpones *japa* until all other work is finished, it will never be possible. There is no end to work – it comes,

one thing after another. This will continue. I will bathe when the sea is calm – just as this is not possible, it is similarly not possible to worship after one has finished all other work. So one should find time to worship in between work. —You have put rice on to boil – now repeat His name. If you have a little more time, enter the shrine and perform *japa* there. —You are going somewhere, practice *japa* on the way. Practicing this way, repeating His name between worldly duties, you will succeed. Why did Thakur say this? He is the world-preceptor. He taught it for the good of humanity. Our worldly duties leave us little time, so in whatever circumstances we are, in every condition, repeat His name.

The skill of how to renounce work or shorten it has also been shown by him.

2. Establish a relationship with God

– 27 March 1923, Chapter 15

“Thakur asked everyone to establish a relationship with Him, such as that of *shānta* [the attitude of calmness], *dāsya* [the attitude of a servant and master], *sakhya* [the attitude of a friend to a friend], *vātsalya* [the attitude of a mother to her child], and *madhura-* [the attitude of a husband and wife]. So it becomes easy.

Christ talked about the relation of the Father and Son, Thakur that of the Mother and Son.

“The rishis, Sanaka and Sanatana, embraced *shāntabhāva*, Hanuman, *dāsya*: ‘I am the servant of Rama.’ King Guhaka and the cowherd boys saw Him as a friend. Yashoda, Kaushalya and Nanda practiced *vātsalya-bhāva*, God-is-my-son attitude. The gopis, on the other hand, followed the path of *madhura--bhāva*. Bhagavan is our husband – this

idea. Christ said that God is his father and he His son. In the end he said, 'I and my Father are one.' (St. John 10:30). Thakur said, 'Mother, You are mother and I am son.' Again the practice of jnana -yoga – I am Brahman, *Tattvamasi* [Thou Art That, you are God].

“As long as separateness from God exists, there is sorrow, there is the cycle of birth and death – *svādu pippala** [eats the fruit with relish] – in other words, the embodied being feels happiness and sorrow. When it becomes one with Him, this very being becomes divine, or jiva becomes Shiva. Then bliss, nothing but bliss and happiness– happiness which is never followed by sorrow, one unbroken happiness. This is the summum bonum of life, the greatest ideal of human life. It is called by various names: God-realization, Brahman-realization, seeing God, Self-realization and all that. But the substance is one.”

3. Five good habits of daily life

– 26 March 1923, Chapter 14

“Thakur could not keep his loin-cloth on. He was always in *samadhi*; but he would enquire whether there was sufficient oil in the container. He kept a particularly keen watch on these few things:

“First of all, **cleanliness and tidiness**. As a common rule people are unclean because of habitual laziness. How many persons forget their bodies by thinking on God? Without cleanliness and tidiness, God cannot be invoked. Both internal and external purity are necessary.

“Second, there should be **no waste**. People waste so many things. He could not bear it. Once at Cossipore, when

* Mundakopanishad 3-1-1.

six pieces of lemon had been cut instead of only one for him, he reacted critically, 'What toil the devotees have to undergo to earn money! And it is with their money that we are being served. Why should it be wasted? He added, 'It's better to be a miser than a spend-thrift.' As a matter of fact, both are undesirable, but it is better to be miserly than to be wasteful. Many people waste rice and other food at mealtime. He did not like it. You should keep some for a dog; otherwise, you should take only as much as you need. Nothing should be wasted.

“Third, he could not bear to see **torn or dirty clothes**. He said, 'Wearing patched clothes, one becomes poor.'

“Fourth, **disorderly habits** – for example, putting things in wrong places. Every-thing should be put in its proper place and artistically.

“Fifth, **cooking one's own food**. He said, 'The bhaktas who carry on spiritual practices must boil their own rice and, first offering it to God, eat it.' In this way he is no longer dependent on others, nor is there any loss of *satva*.”

4. Continuous Worship and Remembrance

– 26 March 1923, Chapter 14

“He taught under all conditions to worship. Nothing can be neglected: in all matters, of food or recreation, or while sleeping, moving or speaking – in everything, He should be remembered. Then alone is there religion.

“People shout, 'Religion! Religion!' but is it so easy, this religion?

“Place of living, house or home, everything should be kept neat and clean, everything arranged nicely. Everywhere His worship – no luxury. Luxury is different from cleanliness

and tidiness or aesthetic and orderly arrangement. Be skillful in every matter and offer everything to God. An idiot has no religion, nor a careless person.

“It is a different matter if God takes away your body-consciousness. Otherwise, one should follow the rule mentioned above. The Gita says:

*Anapekshah shuchirdakshah udäseeno gatavyathah,
Sarvärambhaparityägi yo madbhaktah sa me priyah.**

[He who is free from dependence, who is pure, able, unconcerned, untroubled, renouncing every undertaking – he who is thus devoted to Me, is dear to Me.]

“This is the ideal. See, it says that he who is *dakshah* [able], and expert, *anapekshah* [free from dependence], who does the work before him intelligently, who does not wait for others to do or for others to ask him to do – who is beyond this attitude; again *udäseeno* [unconcerned], therefore is indifferent to benefit or loss – in other words, cares little for his personal gain or loss and yet not careless – who is *sarvärambhaparityägi* [renouncing every undertaking], but who accomplishes in the best possible manner that work which is before him (such a devotee is dear to Me). There is no negligence in him. He is always up and doing – but he must not start any new undertaking himself.”

5. Three Mantras of Thakur

– 23 March 1923, Chapter 11

“Thakur warned on three things– first, giving allowance; second, hissing; and third, keeping aloof —

- (i) is that one has to take a charitable view. Man is composed of both good and evil – this should always

* Bhagvad Gita 12:16.

be kept in mind.

- (ii) “one must show one’s edge to be able to exist in this world; one has to show one’s mettle, otherwise it becomes very difficult to survive. That has to be done. But one must not sting or poison, so one must hiss. Somebody has a business. To keep it running, he will have to deal with people. He will need to hiss. Remaining dumb or behaving like a sheep will not do. He will have to hiss, he will have to threaten. If you do not want to do this, you should retire under a tree and repeat the name of Hari. But if you have to live in the world, you must hiss.

“One of the devotees said to Thakur, ‘What a nature I have! The cat takes away the fish from my plate and I can do nothing to stop it’. Hearing this, Thakur said in a firm voice, ‘Why should that be? Only hit once. Surely it will not kill the cat.’ The devotee had thought that Thakur would appreciate his attitude, but he responded just the opposite. It is not called non-violence; it is deep *tamas*, inertia.

- (iii) “when you see too many faults in a man, salute him from a distance, just as people do to the tiger-Narayana. But salute you must, knowing it to be Narayana. You must bow before the God in it, but only by remaining at such a distance from it that it cannot gulp you down.”

6. Make Children Brave

– 21 March 1923, Chapter 9

“It’s not good to be inconsistent. A doll of butter will not do.

You have to stand up like a hero. The world is full of waves of sorrow. You can only be saved if you face them bravely—you have to be like the ‘bullock worth Rs. 75/-,’ it won’t do to be the ‘Rs.5/- bullock.’ Everybody desires pleasure. Instead of making butter-dolls of children in their childhood, make them brave. ‘None but the brave deserve the best.’”

7. Give a Turning to the Mind

– 1 April 1923, Chapter 20

“Everybody is looking for happiness but is not aware that the greatest happiness lies in knowing one’s own Self. It is why we run about. Husband, wife, son, wealth, all these give joy to the Self, so they are dear. That very Self, that Atman, that Own you must seek. This is what Yagyavalkya exhorted Maitreyi.

“Thakur said, ‘Give a turning to the mind.’ Turn the mind with which you love your husband, your son, towards Him – that is, towards your real Self, towards your Own. Everything is One. Instead of loving the body, love your own Self.

“By withdrawing the mind from relations and property and directing it towards Him, all troubles end. You won’t have to worry for so many – one continuous thought, like the current of the Ganges from the Gomukhi to Ganga Sagar. Otherwise, there is no end of troubles.

“Thakur said, ‘Life, youth, learning, all these have to be surrendered to Him. Then you don’t have to worry so much.’”

Presentation : Nitin Nanda

4

M. on Spiritual Life

The excerpts of this article have been taken from 'M. the Apostle and the Evangelist Part-I'. M. is living in solitude— in Mihijam— He has practiced throughout his life the teachings of Thakur and is very clear in mind that who-so-ever wants peace and joy in life, must follow this path. Let us contemplate on some points one by one.

1

Spending Time in Solitude

One of the few teachings of Shree Ramakrishna to his devotees was to spend some time in solitude. This precept of the Master was observed by M. throughout his life and resulted in his coming to Mihijam ashrama.

In Mihijam ashrama M. has devised a daily routine for the ashrama. He says, "Finish your bath and meals as soon as possible and engage yourself into divine contemplation." He expects meals to be over by 11 o'clock in the morning and 9 o'clock at night. M. himself teaches the brahmacharis the Upanishads, the Gita, the Chandi, the Bhaagavata and the Kathamrita, always at a fixed hour, and then sends them to

distant solitary wilderness to meditate alone every morning and afternoon.

Living with M. at the ashrama, some of the devotees have even forgotten the existence of the outside world. The ashrama is a world of bliss for them, where their minds freely dwell on a higher spiritual plane. It is the result of the holy company of M.— such a pure rishi.

2

Goal of human life and faith in God

“Thakur used to say, ‘The goal of human life is to see God. If a person has not seen God, he has achieved nothing.’ This is the ideal of life and the end of life. Leave it and all is useless. God first – everything else later. Not the reverse: Everything else first, and God later. Did he only say it? No, he himself did it, and he made his intimate disciples do it. They put their faith in his words. That’s why their lives became honey-sweet. Others who are putting their faith in him are receiving their share of it, too, and are receiving peace.

... “Thakur used to say about faith that it has its degrees too. Just as someone has heard about milk, some others have seen milk, and yet others have actually tasted milk. Each experience is higher in succession. The only person who has full faith is one who has tasted milk. Perfect is the faith of avatars such as the Christ and Thakur.

“If you want to get rid of this world of pain, hold onto Me. This is his message. This, he said only to his inner-disciples. Not everybody could accept the command.”

3

Company of Sadhus and Prayers

“Daily company of sadhus must be sought even at personal inconvenience. And nature must be fought with the advice of the guru. Regular contact with sadhus makes the mind calm. When the mind is calm, everything is accomplished.

...

“...One must keep the company of the holy, and all obstacles will vanish.”

4

Doing daily tasks rightly and Spiritual life

M. is teaching a brahmachari how to wash utensils. He personally demonstrates how to finish the job quickly and use less water.

“Water is not bought, and using it thoughtlessly or wasting it is not right. Doing that, extravagance enters one’s nature. It is true that you don’t have to pay for water, but acting extravagantly causes an immense reaction on one’s character.

“Thakur had an eye on everything. Devotees who went to him were trained by personal demonstration. He used to say, ‘He who can keep account of salt can also keep account of sugar-candy.’ A person who is slovenly, ever careless in the simple tasks of daily life, will have difficulty progressing in spiritual life. It is with this very mind that one reaches Him. If there is insincerity or mistaken ideas in the mind, He cannot be attained. Because he bought a pot* with a crack in it, Yogen Swami (Swami Yogananda) was scolded badly by Thakur.

* Karhai, meant for frying articles.

He said to Yogen, ‘Is the shopkeeper Yudhishtira, a personification of spirituality? He will, of course, try to sell his trash. Why didn’t you examine it before bringing it here? You have eyes in your head.’ He was asked to go back then and there and bring a new one in exchange.

“Someone had left Thakur’s umbrella at the Panchavati. When he returned to Thakur’s room, Thakur asked him in a tone of scorn, ‘His (Thakur’s own) clothes do not stay on his body, but never does he commit such a mistake.’

“The whole life should be a spiritual life, all work spiritual practice. Religious conduct for a while and contrary conduct afterwards will not do. Whether eating, walking, sleeping, dreaming, telling beads, concentrating, worshipping or reading the scriptures, in every condition, the mind should remain centered round one thought, one ideal: realization of God.”

5

Practice of Meditation

...

“You must visit the sadhus in their serious moments, at the time of meditation. Only then will a desire to do what they do arise in the mind.

“The beginner has to practice *dhyana* and japa daily, at a fixed time. Even if he has a thousand things to do, he must sit every morning and evening for prayer. Practice makes everything easy. Even five things can be done together. Thakur used to say: One has to rise at three in the morning, if not, at four. Four or five hours sleep, is that not enough? Rising at such an early hour, one has to meditate. By meditating in the Brahma-muhurta, it becomes easy. This is the time of day

when sadhus and realized souls meditate. A spiritual current then flows.

6

Caring your food

“If one is not careful about food at night, he cannot rise early. That’s why Thakur said: You may fill yourself to the full, like gun-powder in cannon, during the day. But at night you must only eat simple, light refreshment. In the house at Shyampukur, I was told: ‘Read the Gita. There you will find directions about measured food and activity. Food of yogis is measured – neither too much nor too little, but simple and substantial, easily digestible. At night, a very light meal only. Eating too much at night makes you drowsy and produces laziness. The stomach rumbles, the mind is restless, the *chitta* (feeling) is disturbed and concentration is lost, unhappiness results.

7

Turmoil in life

Pulin Mitra, a devotee of the Belur Math has come to Mihijam Ashrama. Pulin, faced with an undesirable worldly situation, has been a prey to anxiety. He says, “Master Mahashay! Why does Thakur give us such trouble?” M. replies, “If there is no stormy water, a person cannot become a proficient sailor. Everyone is a pilot in a calm sea. Hence the necessity of turmoil in life. Through these trials lies the path of Truth. Look at those who have become great in life. They have had to pass through innumerable difficulties. A life of plain sailing is the seat of weakness. Whoever God wishes to raise, He throws into troubles. Makaradhvaja (Ayurvedic medicine)

can be made only if it is burnt in hot flames of fire. The wave of danger makes a person stronger. Incidents in the life of the Guru and of others like him should be studied minutely and contemplated – think of the trials and tribulations they passed through – then automatically one’s mental power and strength will increase.

“Swami Brahmananda performed so many austerities. Begging bits of bread to maintain his existence, soaking these bits in water in the morning and eating them at night. Only passing through these waves of life could he become great. He had constantly heard from Paramahansa Deva, ‘My son, the sole aim of life is God-realization. Without it, life is in vain.’

“In front of us lies the rough sea of the world, in the middle is the boat of the guru’s command and in the end is God-realization.”

These are a few points a sadhak must follow so that he remains calm even in this world of sorrows and ultimately travels towards bliss, the neverending bliss.

Presentation : Suneel Bansal



स्वामी विवेकानन्द

- ♦ घर का नाम : नरेन्द्रनाथ दत्त।
- ♦ जन्म : 12 जनवरी, सन् 1863 ईसवी।
- ♦ स्थान : सिमला मुहल्ला, कोलकता।
- ♦ माता-पिता : श्रीमती भुवनेश्वरी देवी और विश्वनाथ दत्त।
- ♦ शिक्षा : बी.ए. दर्शनशास्त्र में विशेष रुचि।
- ♦ गुरु : श्रीरामकृष्ण परमहंस।
- ♦ बेलूड़ मठ की स्थापना : फरवरी, 1898 ईसवी।
- ♦ महासमाधि : 4 जुलाई, 1902 ईसवी।



5**Each is Great in his
Own Place**

(from Swami Vivekanand's
Karmayog)

Life of a householder is often filled with troubles and turmoils. Sometimes it becomes a hell. One starts thinking that he can never get peace and joy in life and cannot be of any use for the society. He starts comparing his life with that of a sanyasin who according to this aggrieved householder lives joyfully in the world and can render greater service to the humanity. But on the contrary our scriptures proclaim that a householder or a sanyasin— each is greater in his own place. Each can render equal service to the society. Each can live happily and joyfully if he performs his duty well.

Shree Ramakrishna has demonstrated this fact in his own life as he has lived the life of both a householder and a monk. And then for further demonstration and for the welfare of the humanity at large, he trained his two deserving disciples— M. as a householder sanyasin and Narendra— Swami Vivekanand as a true Sanyaasin.

In this article Swamiji strengthens this point by illustrating two stories :

The life of every individual, according to the Hindu scriptures, has its peculiar duties apart from what belongs in common to

universal humanity. The Hindu begins life as a student; then he marries and becomes a householder; in old age he retires; and lastly he gives up the world and becomes a Sannyasin.

To each of these stages of life certain duties are attached. No one of these stages is intrinsically superior to another. The life of the married man is quite as great as that of the celibate who has devoted himself to religious work. The scavenger in the street is quite as great and glorious as the king on his throne. Take him off his throne, make him do the work of the scavenger, and see how he fares. Take up the scavenger and see how he will rule. It is useless to say that the man who lives out of the world is a greater man than he who lives in the world; it is much more difficult to live in the world and worship God than to give it up and live a free and easy life.

The four stages of life in India have in later times been reduced to two — that of the householder and of the monk. The householder marries and carries on his duties as a citizen, and the duty of the other is to devote his energies wholly to religion, to preach and to worship God.

The householder is the basis, the prop, of the whole society. He is the principal earner. The poor, the weak, the children and the women who do not work — all live upon the householder; so there must be certain duties that he has to perform, and these duties must make him feel strong to perform them, and not make him think that he is doing things below his ideal.

Going after wealth in such a case is not bad, because that wealth is for distribution. The householder is the centre of life and society. It is a worship for him to acquire and spend wealth nobly, for the householder who struggles to become rich by good means and for good purposes is doing practically the same thing for the attainment of salvation as the anchorite

does in his cell when he is praying; for in them we see only the different aspects of the same virtue of self-surrender and self-sacrifice prompted by the feeling of devotion to God and to all that is His.

The householder by digging tanks, by planting trees on the roadsides, by establishing rest-houses for men and animals, by making roads and building bridges, goes towards the same goal as the greatest Yogi.

...“If the householder dies in battle, fighting for his country or his religion, he comes to the same goal as the Yogi by meditation,” showing thereby that what is duty for one is not duty for another. At the same time, it does not say that this duty is lowering and the other elevating. Each duty has its own place, and according to the circumstances in which we are placed, we must perform our duties.

One idea comes out of all this — the condemnation of all weakness. This is a particular idea in all our teachings which I like, either in philosophy, or in religion, or in work. If you read the Vedas, you will find this word always repeated — fearlessness — fear nothing. Fear is a sign of weakness. A man must go about his duties without taking notice of the sneers and the ridicule of the world.

If a man retires from the world to worship God, he must not think that those who live in the world and work for the good of the world are not worshipping God: neither must those who live in the world, for wife and children, think that those who give up the world are low vagabonds. Each is great in his own place.

This thought I will illustrate by a story:

A certain king used to inquire of all the Sannyasins that came to his country, “Which is the greater man — he who gives up

the world and becomes a Sannyasin, or he who lives in the world and performs his duties as a house holder?" Many wise men sought to solve the problem. Some asserted that the Sannyasin was the greater, upon which the king demanded that they should prove their assertion. When they could not, he ordered them to marry and become householders. Then others came and said, "The householder who performs his duties is the greater man." Of them, too, the king demanded proofs. When they could not give proofs, he made them also settle down as householders.

At last there came a young Sannyasin, and the king similarly inquired of him also. He answered, "Each, O king, is equally great in his place." "Prove this to me," asked the king. "I will prove it to you," said the Sannyasin, "but you must first come and live as I do for a few days, that I may be able to prove to you what I say." The king consented and followed the Sannyasin out of his own territory and passed through many other countries until they came to a great kingdom. In the capital of that kingdom a great ceremony was going on. The king and the Sannyasin heard the noise of drums and music, and heard also the criers; the people were assembled in the streets in gala dress, and a great proclamation was being made. The king and the Sannyasin stood there to see what was going on. The crier was proclaiming loudly that the princess, daughter of the king of that country, was about to choose a husband from among those assembled before her.

It was an old custom in India for princesses to choose husbands in this way. Each princess had certain ideas of the sort of man she wanted for a husband. Some would have the most handsome man, others would have only the most learned, others again the richest, and so on. All the princes of the neighbourhood put on their bravest attire and presented

themselves before her. Sometimes they too had their own criers to enumerate their advantages and the reasons why they hoped the princess would choose them. The princess was taken round on a throne, in the most splendid array, and looked at and heard about them. If she was not pleased with what she saw and heard, she said to her bearers, "Move on," and no more notice was taken of the rejected suitors. If, however, the princess was pleased with any one of them, she threw a garland of flowers over him and he became her husband.

The princess of the country to which our king and the Sannyasin had come was having one of these interesting ceremonies. She was the most beautiful princess in the world, and the husband of the princess would be ruler of the kingdom after her father's death. The idea of this princess was to marry the most handsome man, but she could not find the right one to please her. Several times these meetings had taken place, but the princess could not select a husband. This meeting was the most splendid of all; more people than ever had come to it. The princess came in on a throne, and the bearers carried her from place to place. She did not seem to care for any one, and every one became disappointed that this meeting also was going to be a failure. Just then came a young man, a Sannyasin, handsome as if the sun had come down to the earth, and stood in one corner of the assembly, watching what was going on. The throne with the princess came near him, and as soon as she saw the beautiful Sannyasin, she stopped and threw the garland over him. The young Sannyasin seized the garland and threw it off, exclaiming, "What nonsense is this? I am a Sannyasin. What is marriage to me?" The king of that country thought that perhaps this man was poor and so dared not marry the princess, and said to him, "With my daughter goes half my kingdom now, and the whole kingdom after my death!" and put the garland again on the Sannyasin. The young man

threw it off once more, saying, "Nonsense! I do not want to marry," and walked quickly away from the assembly.

Now the princess had fallen so much in love with this young man that she said, "I must marry this man or I shall die"; and she went after him to bring him back. Then our other Sannyasin, who had brought the king there, said to him, "King, let us follow this pair"; so they walked after them, but at a good distance behind. The young Sannyasin who had refused to marry the princess walked out into the country for several miles. When he came to a forest and entered into it, the princess followed him, and the other two followed them. Now this young Sannyasin was well acquainted with that forest and knew all the intricate paths in it. He suddenly passed into one of these and disappeared, and the princess could not discover him. After trying for a long time to find him she sat down under a tree and began to weep, for she did not know the way out. Then our king and the other Sannyasin came up to her and said, "Do not weep; we will show you the way out of this forest, but it is too dark for us to find it now. Here is a big tree; let us rest under it, and in the morning we will go early and show you the road."

On that tree a little bird and his wife and their three little ones lived in a nest. This little bird looked down and saw the three people under the tree and said to his wife, "My dear, what shall we do? Here are some guests in the house, and it is winter, and we have no fire." So he flew away and got a bit of burning firewood in his beak and dropped it before the guests, to which they added fuel and made a blazing fire. But the little bird was not satisfied. He said again to his wife, "My dear, what shall we do? There is nothing to give these people to eat, and they are hungry. We are householders; it is our duty to feed any one who comes to the house. I must do

what I can, I will give them my body.” So he plunged into the midst of the fire and perished. The guests saw him falling and tried to save him, but he was too quick for them.

The little bird’s wife saw what her husband did, and she said, “Here are three persons and only one little bird for them to eat. It is not enough; it is my duty as a wife not to let my husband’s effort go in vain; let them have my body also.” Then she fell into the fire and was burned to death.

Then the three baby-birds, when they saw what was done and that there was still not enough food for the three guests, said, “Our parents have done what they could and still it is not enough. It is our duty to carry on the work of our parents; let our bodies go too.” And they all dashed down into the fire also.

Amazed at what they saw, the three people could not of course eat these birds. They passed the night without food, and in the morning the king and the Sannyasin showed the princess the way, and she went back to her father.

Then the Sannyasin said to the king, “King, you have seen that each is great in his own place. If you want to live in the world, live like those birds, ready at any moment to sacrifice yourself for others. If you want to renounce the world, be like that young man to whom the most beautiful woman and a kingdom were as nothing. If you want to be a householder, hold your life a sacrifice for the welfare of others; and if you choose the life of renunciation, do not even look at beauty and money and power. Each is great in his own place, but the duty of the one is not the duty of the other.

Presentation : Sandeep Nagia



स्वामी नित्यात्मानन्द जी

- ♦ जन्म का नाम : जगबन्धु राय।
- ♦ जन्म : गंगा दशहरा सन् 1893 (मामा श्री भैरवराय और श्री गोबिन्दराय के घर)
- ♦ स्थान : पूर्वी बंगाल (बंगला देश) के मैमनसिंह ज़िले का कोठियादि नाम का कस्बा
- ♦ शिक्षा : लॉ तक। लॉ करते-करते श्री म के पास जाने लगे। श्री म कथित ठाकुर की बातें डायरी में लिखने लगे।
- ♦ दीक्षा : स्वामी शिवानन्द (महापुरुष महाराज) से दीक्षित।
- ♦ ऋषिकेश-वास : सन् 1938 से ऋषिकेश में वास और 'श्री म दर्शन' महाग्रन्थ माला का लेखन और प्रैस कॉपी की तैयारी।
- ♦ सन् 1958 में श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता से भेंट। शेष जीवन प्रायः उन्हीं के वास को निज आश्रम बनाए रखा। उनकी सहायता से श्री म दर्शन का मुद्रण-प्रकाशन आरम्भ। सन् 1967 में श्री म ट्रस्ट की स्थापना।
- ♦ महासमाधि : 12 जुलाई, सन् 1975 को चण्डीगढ़ में।



शाश्वत शान्ति-सुख-आनन्द का मन्त्र :
आगे ईश्वर, परे सब
 — स्वामी नित्यात्मानन्द

कॉलिज के पढ़ने के दिनों में एक बार किसी घटना से स्वामी नित्यात्मानन्द इतने व्यथित, इतने अशान्त हो गए थे कि हर समय भीतर से प्रार्थना चलती— 'हे ईश्वर! इस (अपनी) बुद्धि के भरोसे अब और चल नहीं सकता। कृपा करके कोई ऐसा जन मिला दो जिसकी वाणी दैनन्दिन जीवन में slave, दास की तरह मानकर चलूँ।'* और सुयोग से उन्हें मिल गए मास्टर महाशय— श्री 'म' गुरु रूप में, 'कर्णधार' रूप में।

अब वस्तुएँ तो भले ही वही रहीं, रहनी भी थीं, बदल गया स्वामी नित्यात्मानन्द का दृष्टिकोण। वे रहने लगे श्री म के साथ, उनके पास, छायावत्। वे सभी कार्य करते श्री म के पास रहते हुए ही उनके मार्ग दर्शन में। वे अपनी आँख से देखते कि श्री म के मुख से ठाकुर-वाणी 'कथामृत' श्रवण कर संसार-अनल से जलते हुए जन कैसे सुख, शीतलता पा रहे हैं। उनके मन में आया श्री म के मुख से सुनी बातें संजोकर रख लूँ। पीछे जब श्री म नहीं रहेंगे, यही वाणी मेरे जीवन का

* श्री म दर्शन भाग-I की भूमिका

सम्बल होगी, यही सुख-दुःख के झंझावातों से मेरी रक्षा करेगी।
सो वे श्री म के मुख से सुनी बातें अपने पास नोट करके रखने
लगे।

श्री म के संग में रहते हुए स्वामी नित्यात्मानन्द ने जान
लिया था कि ईश्वर ही मनुष्य का अनन्तकाल का बन्धु है।
संसार के परिजन तो दो दिन के बन्धु हैं। अत एव 'आगे
ईश्वर, परे सब', यही चरम सत्य है। इसे ही जीवन में जाग्रत
और जीवन्त करना होगा। इसका ही नाम है यथार्थ धर्म।
इसी के पालन से रहा जा सकता है सर्वदा, सर्वकाल में 'निश्चिन्ते
और आनन्दे'। कैसे?— स्वामी नित्यात्मानन्द लिखते हैं :

श्रीरामकृष्ण की शिक्षा से श्री म ने समझ लिया था— शाश्वत सुख, शान्ति
और सुख की खान श्री भगवान के श्री पादपद्म हैं। इसीलिए वे श्रीरामकृष्ण
की कृपा और अपनी चेष्टा से ईश्वर के प्रति अविचलित प्यार प्राप्त करके
सर्वावस्था में ही हृदय में शान्ति, सुख, आनन्द उपभोग किया करते। सांसारिक
नाना कर्मों और विपत्ति के भीतर हम ने उनको देखा है, उनके हृदय में सर्वदा
शान्ति विराज किया करती।

... मनुष्य यदि स्मरण रखे कि वह काय-मन-वाक्य से श्री भगवान
का दास है एवं इसी भावना से संसार का भोग दासवत् ग्रहण करे— जितने के
लिए बिना शरीर धारण नहीं होता, केवल उतना ही भोग लेता है और उससे ही
सन्तुष्ट रहता है, —जैसे बड़े घर की दासी मालकिन के दिए आहार, वस्त्र,
वासस्थान लेकर सन्तुष्ट रहती है, — वैसा होने पर ही सर्वदा शान्ति विराज
कर सकती है।

यथार्थ भक्तगण दृढ़ भाव से विश्वास करते हैं, भगवान ही कर्ता हैं,
मनुष्य अकर्ता है। तभी वे लोग भगवान के दिए इस शरीर-मन-बुद्धि रूप
यन्त्र द्वारा उपार्जित समग्र शुभाशुभ फल भगवान को अर्पण करते हैं। जैसे
कोई विश्वस्त कर्मचारी सर्वअन्तःकरण से मालिक का कर्म करता है और
सोचता है, इस कर्म में लाभ होने पर मालिक का लाभ है और नुकसान होने

से भी मालिक की ही हानि है। ... ऐसी बुद्धि से सर्व कर्म सम्पादन करने पर चित्त में सर्वदा शान्ति रहती है।

गृहस्थ के घोर झंझावात में भी श्री म के इस दासीवत्, यन्त्रवत् आचरण के कारण उनके चित्त में शान्ति, सुख और आनन्द विराज करता रहता था।

फिर साधारण व्यक्ति के चित्त में शान्ति स्थायी क्यों नहीं होती? उसका कारण यही है, वे मन में सोचते हैं, जगत आगे परे ईश्वर। सच्चा भक्त सोचता है, ईश्वर आगे परे जगत। इसीलिए उनके (साधारण लोगों के) मन में अशान्ति रहती है।

ईश्वर-विमुखी व्यक्तिगण सोचते हैं, अन्न-वस्त्र-वासस्थान आदि की सुव्यवस्था होने से ही शान्ति है। हाँ, शान्ति तो चाहे है, किन्तु क्षणस्थायी है! मनुष्य के मन के स्वाभाविक काम-क्रोध आदि वृत्तियों का दमन बिना हुए शान्ति कैसे सम्भव है? तभी जगत में देखा जाता है, वर्तमान समय में विशेषकर, धनसम्पद में अति ऐश्वर्यशाली जाति के लोग ही अशान्त हैं।

भारत के ऋषियों ने सुस्पष्ट भाव में देख लिया था, मनुष्य के इस स्थूल शरीर को छोड़कर और भी दो शरीर हैं एक के पश्चात् एक— सूक्ष्म और कारण शरीर। उसके पीछे महाकारण अन्तर्यामी हैं।

स्थूल, सूक्ष्म, कारण— इन तीनों शरीरों को ही आहार चाहिए। स्थूल शरीर का आहार है— अन्न-वस्त्रादि। सूक्ष्म शरीर का आहार विद्यादि उपार्जन है— जिसके द्वारा विचारशक्ति की प्रखरता (तेजी) बढ़ती है। और कारण शरीर का आहार है— जीव का भगवान के साथ उसके नित्य सम्बन्ध के पुनः आविष्कार की चेष्टा। इसको ही साधारण बोली में कहते हैं— पूजा, पाठ, जप और ध्यान। इसी तीसरे के द्वारा शान्ति की अफुरन्त खान के संग में युक्त हुआ जाता है। ऋषियों ने तभी उपदेश दिया है—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

वर्तमान जगत की पराक्रान्त राजशक्ति, ऋषियों की इस व्यवस्था का

अपप्रयोग करने के कारण ही बाहरी जागतिक विषय में बुद्धि का अति उत्कर्ष लाभ करके भी अशान्त है। वे दैनन्दिन जीवन में ईश्वर को छोड़ देने से काम, क्रोध, लोभ आदि को वशीभूत करने में समर्थ नहीं हैं।

....

ऋषियों की यही महावाणी युग-युग में राम, कृष्ण, बुद्ध, क्राइस्ट आदि देवमानवों ने ध्वनित और प्रतिध्वनित की है। यही उस दिन भगवान श्रीरामकृष्ण ने भी उसी प्रतिध्वनि में अपना कण्ठ-स्वर मिला दिया है। वे स्नेहमयी जननीवत् आकुल प्राण से, व्याकुल अन्तर से, जगतवासियों से कहते हैं— जगत के मालिक के संग सम्पर्क बनाकर सर्व कार्य करो।

हमने श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग पार्षदों को देखा है, वे लोग शाश्वत शान्ति-सुख के अन्वेषी को सर्वदा यही उपदेश दिया करते थे— आगे ईश्वर, परे जगत। पहले ईश्वर के संग अपना लुप्त नित्य निज सम्पर्क पुनः प्रतिष्ठित करो। पहले तुम स्वयं शान्ति प्राप्त करो, पीछे दूसरे को इसी शान्ति-लाभ का उपदेश दो, शान्ति-लाभ में सहायता करो।

...

भारतीय ऋषिगण कहते हैं, ईश्वर को छोड़कर शान्ति-प्रतिष्ठा नहीं होती। ईश्वर और साम्राज्य को एक संग में युक्त करना होगा। कारण, इस विश्वसाम्राज्य के एकमात्र अधिपति ईश्वर हैं। उनको छोड़कर विश्वशान्ति-प्रतिष्ठा की चेष्टा निष्फल है।

पाश्चात्य के मनीषीगण— मैक्समूलर, रोमां रोलां, ऐलडस हक्सले आदि भी भारत के ऋषियों की चिर-आचरित व्यवस्था ही अन्त में समर्थन कर गए हैं। कहा है, जगत की शान्ति-प्रतिष्ठा वे ही कर सकेंगे जिन्होंने निज शान्ति-लाभ करके, निजी स्वरूप जानकर ऋषित्व-पद लाभ किया है, सर्वजीव में श्रीभगवान को देख पाए हैं। भारत के सम्राट भी ऋषि थे, राजर्षि थे।*

प्रस्तुति : डॉ० निर्मल मित्रल

* श्री म दर्शन भाग-VII की भूमिका से

“सात्त्विक साधक धैर्य के साथ सब काम किए जाता है— दानव्रतयज्ञादिक कर्म हों, चाहे ध्यानजपादिक ही हों। एक जन्म में (ईश्वर-लाभ) न भी हो, अगले जन्म में होगा। निरुत्साही नहीं होगा। ठाकुर कहा करते थे, ‘खानदानी किसान, एक वर्ष फसल नहीं होती तो बैठ नहीं जाता, खेती करता ही रहता है।’

“राजसिक कर्मों में selfish motive, स्वार्थ बुद्धि रहती है, जभी कर्म में आसक्ति। इसीलिए वह सिद्धि में हर्षयुक्त और असिद्धि में विषादग्रस्त हो जाता है। महालोभी और परपीड़क। दूसरों को कुछ देना नहीं जानता, केवल लेना ही जानता है। अपना-पराया का भेद-ज्ञान अति प्रबल। भोग की वासना अतिशय प्रबल।

“तामसिक कर्मों का ईश्वर के संग योग नहीं— ठीक जैसे पशु। उसे खाना-पहनना ही सार, उच्च चिन्ता नहीं। अतिशय जड़बुद्धि और स्तब्ध अर्थात् अविनयी। कर्कषभाषी— लट्टमार बात करता है। तामसिक कर्मों शठ होता है— cunning like a jackal, भेड़िए की न्यार्यी धूर्त और मायावी। येन केन प्रकारेण कार्यसिद्धि करता है— सत्य और मिथ्या के पार।

...”



श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता (1915 – 2002)

- ◆ सन् 1958 की प्रथम भेंट में ही स्वामी नित्यात्मानन्द की अन्तरंग शिष्या एवं उनके पश्चात् श्री म ट्रस्ट की आजीवन अध्यक्षा।
- ◆ स्वामीजी द्वारा रचित बंगला 'श्री म दर्शन' ग्रन्थामाला का
 - प्रकाशन
 - हिन्दी-अनुवाद तथा प्रकाशन
- ◆ बंगला कथामृत का हिन्दी-अनुवाद तथा प्रकाशन।
- ◆ इनके पति प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा
 - हिन्दी 'श्री म दर्शन' का 'M., the Apostle and the Evengelists' नाम से तथा
 - हिन्दी कथामृत का 'Kathamrita' नाम से ही
 - अंग्रेजी-अनुवाद और प्रकाशन



सुख, शान्ति और आनन्द

—श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता

स्वामी नित्यात्मानन्द की अनन्य शिष्या श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता सन् 1958 में अपने गुरु से पहली बार मिली थीं। फिर ठीक एक वर्ष बाद सन् 1959 में। सन् 1960 से अपने गुरु का सान्निध्य व सत्संग उन्हें बराबर मिलता रहा। श्रीमती गुप्ता के मन में सन् 1934 से ही, जब वे 19-20 वर्ष की थीं, तब से ही चल रहा था कि आज के युग में भी प्राचीन काल के ऋषियों की भाँति गृहस्थाश्रम में रहते हुए ही सदा-सर्वदा परमानन्द में कैसे रहा जा सकता है? अपने गुरु से उन्हें अपने इस प्रश्न का उत्तर मिला। अन्य प्रसुप्त जिज्ञासाएँ भी शान्त हुईं। उनकी सोच, उनकी समझ इतनी गहरी होती चली गई कि उनका रूपान्तरण ही हो गया। इस बात की झलक उनके इस लेख में स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है।

श्रीमती गुप्ता ने 'सुख, शान्ति और आनन्द'— इस नाम से तीन लेख सन् 1965 में गवर्नमेंट कॉलिज, रोहतक की पत्रिका 'रोहतास' (हिन्दी-विभाग) के लिए लिखे थे। ये तीन लेख एक ही लेख के तीन भाग रहे हों— ऐसा भी कहा जा सकता है। श्रीमती गुप्ता ने बड़े ही नाटकीय ढंग से 'रोहतास' पत्रिका का ही मानवीकरण करते हुए उसे अपने

निकट आए पूर्व परिचित जिज्ञासु का रूप देकर उसके साथ वार्तालाप आरम्भ कर दिया। इसी वार्तालाप के दौरान सुख, शान्ति एवं आनन्द स्वतः परिभाषित एवं व्याख्यायित होते चले गए। जिज्ञासु रोहतास को अपने प्रश्नों के उत्तर, अपनी समस्याओं के समाधान मिलते चले गए।

इन लेखों में श्रीमती गुप्ता स्पष्ट करती हैं कि यथासम्भव सभी दैहिक सुख व मानसिक शान्ति के साधन जुटा लेने पर, उन्हें पा लेने व भोग लेने पर भी हम अनुभव करते हैं कि हम सुखी नहीं हैं, हमें शान्ति नहीं है। हमें कहीं न कहीं कोई अभाव खटकता ही रहता है। रोहतास को भी अपने जीवन में यह अभाव खटकता है। वह कहता है कि उसके सभी प्रयत्न उसे सम्पूर्ण सुख, सम्पूर्ण आनन्द— परमानन्द नहीं दे पा रहे। उसे पता चलता है कि इस परमानन्द की प्राप्ति ही तो जीवन का लक्ष्य है और इसे पा लेना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार भी। अब रोहतास की जिज्ञासा बन गई कि इस परमानन्द की प्राप्ति कैसे हो? उसकी इसी जिज्ञासा का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण है इन तीनों लेखों में।

पहले लेख में 'रोहतास' का नाम लिए बिना ही उसके साथ श्रीमती गुप्ता के संवाद हैं। दूसरे में वे उसे नाम से पुकारती हैं। उनके सामने वह जीवन्त खड़ा हुआ है। तीसरे में वे रोहतास को पत्र लिखकर सब समझाती हैं।

श्रीमती गुप्ता के ये तीनों लेख उनकी अपनी अद्भुत, विलक्षण संवाद-शैली में, उन्हीं के शब्दों में, संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत हैं नूपुर-2001 में से—

क्रियाशील है, प्रयत्नशील है। वह अपने देह-मन को सुख देने वाले सभी साधन जुटाता है। तो भी उसके मन को शान्ति नहीं। श्रीमती गुप्ता उसे बताती हैं कि सर्वप्रथम वह स्वयं को जाने, अपनी संरचना को जाने, अपने तीन शरीरों को जाने जिनसे उसकी, प्रत्येक मनुष्य की, रचना होती है। वे उसे तीनों शरीरों— स्थूल, सूक्ष्म और कारण के बारे में बताती हैं और स्पष्ट करती हैं कि वह न तो स्थूल शरीर अर्थात् देह है, न ही सूक्ष्म शरीर अर्थात् मन है। वास्तव में वह है कारण शरीर अर्थात् आत्मा। असल में जीव दैहिक व मानसिक सुखों को ही आनन्द मानने की भूल कर बैठता है।

स्वयं पर से इस भूल की मिट्टी हटा लेने पर यह ज्वलन्त संसार भी मजे का स्थान हो जाएगा।

श्रीमती गुप्ता लिखती हैं :

जीव किसी खोज में सर्वदा ही दृष्टिगोचर होता है।

- गिलहरी आई, ढूँढने लगी, मुँह मारा, फुदकी, डरी और दौड़ गई।
- बालक रो रहा है। खिलौना, मिठाई मिली और हँसने लगा। टूट गया, पेट में दर्द।
- किशोर— नहीं, पतंग ही लेनी है और कुछ भी नहीं। पतंग मिल गई, कट गई, फट गई।
- “हे भगवान्! पास कर दो, प्रसाद चढ़ाऊँगी”, कॉलिज की छात्रा ने अगरबत्ती जलाकर प्रार्थना की। पास हो गई, सुख मिला, प्रसाद चढ़ाया। परन्तु फिर भी खुशी नहीं।
- नौकरी लगेगी, तब ही शान्ति है। नहीं, घर बनेगा तब चैन मिलेगा। नहीं, वह विलायत से पढ़कर आया है। मुझे उसके लिए भी रुपया चाहिए। परन्तु फिर भी शान्ति नहीं, खुशी नहीं।

“गुरु जी! बड़ा ही कष्ट है। असह्य है। कहीं छुटकारा नहीं। शान्ति का मार्ग

दिखाओ, महाराज।”

“हाँ बच्चे! संसार ज्वलन्त आग है। इससे किसी तरह बचाव नहीं। केवल एक मार्ग है— अपने को प्यार करो।”

“अपने को प्यार? हैं! वह तो मैं बहुत करता हूँ। इसे बहुत स्वस्थ रखने का प्रयत्न करता हूँ। बढ़िया-बढ़िया भोजन देता हूँ। इसे सजाता भी बहुत हूँ। सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, जूता-घड़ी क्या नहीं देता? इसके सुख का भी बहुत ध्यान है। घर में बिजली के पंखे, फ्रिज, मोटर-गाड़ी, नौकर-चाकर सभी तो हैं। परन्तु इसे सुख नहीं। जी, इससे और किस प्रकार प्यार करूँ?”

“अरे मूर्ख! तुम शरीर नहीं हो!”

“मैं तो, जी महाराज, सुन्दर-सुन्दर पुस्तकें पढ़ता हूँ, क्लब जाता हूँ, ताकि मन खुश रहे। कहते हैं, मन से सुख मिलता है।”

“हाँ, मन ही तो सब कुछ है। वह शान्त हुआ तो सब ओर आनन्द ही आनन्द है।”

“महाराज! (चरणों को छूते हुए) यही बात तो डॉक्टर ने कही थी, यही तो मनोवैज्ञानिक चिकित्सक ने कही थी। यही तो कविराज जी कहते हैं। मैं मन से खुश रहना चाहता हूँ। परन्तु फिर न जाने कहाँ से चिन्ता आ घुसती है। शरीर के सुख तथा मन की शान्ति के लिए तो मैं सब कुछ ही करता हूँ। दवाएँ भी एक से एक बढ़िया ले रहा हूँ। जी, एक-एक गोली कभी-कभी तो दो-दो रुपये तक आती है। पहाड़ पर जाकर भी अभी गर्मी में दो हजार खर्च कर डाला है। आमदनी भी तो मेरी इतनी नहीं। परन्तु शरीर स्वस्थ और सुखी होगा तो फिर पैसा भी जमा कर लूँगा। जी, मसूरी जाते हुए हरिद्वार भी ठहरा था। श्रीगंगा जी में स्नान भी किया। किसी ने कहा था, वहाँ स्नान करने से सब पाप कट जाते हैं। जो कोई कुछ कहता है, वही तो करता हूँ। परन्तु फिर भी जल ही रहा हूँ।”

“परन्तु तुम मन तो नहीं हो। मन तो तुम्हारा नौकर है। तुम इसके मालिक हो। वह मालिक कौन है?— यह जानने का प्रयत्न करो।”

“मैं, मैं एक मनुष्य हूँ। मेरे पिता जज थे। मैं एम.ए. करके अध्यापन कार्य कर

रहा हूँ। विलायत हो आया हूँ। पीएच.डी. कर ली है। जीविकोपार्जन ऊँचा है। जाति का मैं क्षत्रिय हूँ।”

“हाँ-हाँ, यह सब तो तुम्हारा स्थूल शरीर है। इसको चलाने वाला ‘मैं’ कौन है?”

“जी, आपका प्रश्न मैं समझा नहीं। बुद्धि आज कुछ काम नहीं कर रही। दुःखों, कष्टों, चिन्ताओं, यन्त्रणाओं से विमूढ़-सा हो गया हूँ। आप की शरण आया हूँ। (चरणों में गिरकर) आप ही बतलाएँ यह क्या भेद है? फिर ‘मैं’ कौन हूँ?”

“तुम्हारे शरीर का मालिक तुम्हारा जीवात्मा है। इसे ‘कारण’ कहते हैं। इसे जानना होगा। यह कौन है? कहाँ से आया है? क्यों आया है? इसके शरीर धारण करने का क्या उद्देश्य है?— यह जानना होगा।

महाकारण इसका पिता है। पिता ने कारण को परमानन्द का भोग करने के लिए शरीर दिया है। जिसे तुम ‘मैं’ कहते हो, तुम भूल से इसे ‘मैं’ कह रहे हो। ‘मैं’ ने तीन वस्त्र पहने हुए हैं। वस्त्रों के नीचे ‘मैं’ इस प्रकार छिप गया है जिस प्रकार अभिनेता का अस्तित्व मूल पात्र के अभिनय के समय छिप जाता है। हम भूल से ‘अशोक कुमार’ को भिखारी कह उठते हैं अथवा ‘देविका रानी’ की फोटो को सती पार्वती की तरह पूजने लग जाते हैं।

यह ‘मैं’ तीन वस्त्र पहने हुए है। जिस वस्त्र को तुम देख रहे हो वह स्थूल शरीर के नाम से परिचित है। इसे ही तुम ‘मैं’ कहते हो— मैं अमुक की सन्तान, अमुक जाति, अमुक अधिकारी।

दूसरा वस्त्र तनिक सूक्ष्म है, इन स्थूल नेत्रों से दिखाई नहीं देता। उसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं। उसे ही तुम ‘मन’ कहते हो।

तीसरा वस्त्र अदृश्य है। इसका नाम है कारण शरीर। यह शाश्वत आनन्द है। इसे ही जीवात्मा भी कहते हैं।

दूसरा, सूक्ष्म शरीर— मन ही सब कुछ है। परन्तु स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर (मन) दोनों ही विनाशशील हैं। तीसरा, कारण शरीर, अविनाशी है। मन, स्थूल और कारण दोनों को प्रकाशित करता है और दोनों के ही गुण ग्रहण करता है। परन्तु इसका अपना शरीर चञ्चल है। जैसा देखता है, वैसा ही करने लगता है।

स्थूल शरीर सुख चाहता है।
 सूक्ष्म शरीर (मन) शान्ति चाहता है।
 कारण शरीर आनन्द चाहता है।

मन चञ्चल स्वभाव के कारण सामयिक विनाशशील सुख को आनन्द मान बैठता है और कारण के शाश्वत आनन्द को भूल जाता है। भूलते-भूलते वह इसी स्थूल शरीर के सुख में लीन हो जाता है। भूल की मनो मिट्टी उस कारण शरीर के अनन्त आनन्द को ढक लेती है। और फिर मन के चक्कर में यह स्थूल शरीर आनन्द के जन्मसिद्ध अधिकार के लिए भटकता फिरता है।

“बच्चे, यदि शाश्वत आनन्द चाहते हो तो कारण शरीर के ऊपर पड़ी भूल की मनो मिट्टी हटा डालो। कभी दुःख-कष्ट नहीं होगा। फिर यही ज्वलन्त संसार मजे का स्थान हो जाएगा।”

“जी महाराज, कैसे?”

- 2 -

दूसरे लेख में अपने पास आए ‘रोहतास’ को श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता उसे उसके नाम से ही सम्बोधित करती हैं। पिछली बार का, उनकी कल्पना का रोहतास अब बदल गया है। उसके चेहरे पर की चिन्ता-रेखाएँ अब मिट चुकी हैं और दृढ़ निश्चय उसके चेहरे पर स्पष्ट दिखने लगा है। कारण, अब उसे गुरु रूप में वह ‘माँ’ मिल चुकी हैं जिसने उसे ‘वह शेर का बच्चा है, बकरी का नहीं’, यह बोध करवा दिया है। अब श्रीमती गुप्ता उसे समझाती हैं कि उसे स्वयं से प्यार करना सीखना होगा। फिर धीरे-धीरे यही प्यार का भाव परिवार, समाज, देश से होते हुए सम्पूर्ण वसुधा तक फैलता है। और इसी से निकलता है आनन्द का मार्ग। अब वे अब तक बताई बातों पर श्रद्धापूर्वक विचार करते हुए आगे बढ़ने के लिए उसे भेज देती हैं।

रोहतास के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रीमती गुप्ता कहती हैं :

...आनन्द-वर्षण हो रहा है। शान्ति-ही-शान्ति है। फूल खिलता है, भौरें स्वयं ही चले आते हैं। दीपक जला और पतंगे आ गए।

केवल भूख, केवल कुछ वासना, केवल जलना ही जलना— यह क्या है? एक ओर अनन्त आनन्द, शान्ति और सुख का झरना और दूसरी ओर ज्वलन्त आग। जलना ही जलना। माँ, शरणागत! प्रेममयी माँ, शरणागत!

अर्जुन ने पाँव पकड़ लिए “शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वा प्रपन्नम्।” साकार बोला— “क्या है? क्या हुआ? कौन हो?”

डूबते को सहारा मिला। खिल उठा। शान्त हुआ। पाँव पकड़े। “माँ! मैं, मैं, मैं। प्रेममयी माँ, मैं दुःखी।”

“तुम कौन? रोहतास?”

“जी, आप को मेरा नाम कैसे पता लग गया?”

“तुम अक्टूबर सन् 1965 में आए थे न? वही नहीं हो क्या? परन्तु अब तो बहुत बदल गए हो। मुझे तो बेटा, तुम्हें पहचानने में भी देर लग गई। सूखा मुख अब भर रहा है। चिन्ता-रेखाएँ मिट रही हैं। अभाव के स्थान पर दृढ़-निश्चय की दृढ़ता विकसित हो रही है। यह कैसे हुआ? कौन-सा नया साथी मिल गया जो इतना परिवर्तन हुआ?”

(हाथ जोड़कर) “महाराज! मुझे माँ मिल गई। मुझे मेरी अपनी खोई माँ मिल गई। मैं शेर का बालक था, बकरियों के घर रह रहा था। तभी तो यह हाल हो गया था। मुझे अब मेरी माँ मिल गई है।”

(पाँव पकड़कर) माँ, माँ, माँ! (सुबकते हुए सिसकियाँ लेने लगता है)।

“बेटा! Arise, awake and stop not till the goal is reached. कमर कसो और आनन्द मार्ग पर चल पड़ो। रोने से या बैठे रहने से कुछ न

होगा। युद्ध में वीर की न्यार्यीं सिर पर कफन बाँध कर चल पड़ो। (हँसते हुए मजाक से) अच्छा, डॉक्टर साहब, आजकल कर क्या रहे हो?”

“जी छुट्टियाँ ले ली हैं, अब नौकरी छोड़ना चाहता हूँ। इसी मार्ग पर चलूँगा बस। अब अध्यापन में मन नहीं है।”

“काम छोड़ोगे? क्या-क्या क्रिया छोड़ सकोगे? छोड़नी तो चाहिए थी भूल-भ्रान्ति, जिसके कारण जगत में इतनी आग बरस रही है। और छोड़ रहे हो विद्या-दान, जो अन्नदान, प्राणदान से भी बढ़कर है। इससे बड़ा दान तो केवल ब्रह्मदान ही है। वह भी यदि दाता को सुबुद्धि मिल जाए तो स्वतः ही अपने शिष्यों को दिया जाता है।”

“महाराज! सुबुद्धि क्या है और कुबुद्धि क्या है?”

“सुख-शान्ति, आनन्द के मार्ग पर ले चलने वाली प्रदर्शिका को सुबुद्धि, आत्मबुद्धि, शुद्धबुद्धि, अथवा ईश्वरबुद्धि कहते हैं। असुख, अशान्ति और निरानन्द के मार्ग की ओर ढकेलने वाली पथ-प्रदर्शिका को कुबुद्धि, असद्बुद्धि, विनाशबुद्धि, अशुद्धबुद्धि अथवा देहबुद्धि (संसारबुद्धि) कहते हैं।

देहबुद्धि मानव जीव को मन-होश (मनुष्य) न बनाकर उल्टा मनुष्य—वन-मानुष (पशु) बना देती है। वह केवल ‘मैं-मेरा’ में ही पड़ा रहता है। अपनी देह तक ही सोचता है। स्थूल के हाथों बिक जाता है। सूक्ष्म देह (मन) तथा कारण-जीवात्मा को भूलता जाता है। वहीं तथा तभी दुःख, अशान्ति आरम्भ हो जाती है।

आत्मबुद्धि मानव को आत्म-परक बना देती है। ‘हम सब एक समान हैं।’ यह शरीर तो गिलाफ मात्र है। रुई सब में एक ही है। ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ हमारे भारत की संस्कृति का मूल है। यही मूल तो आत्मबुद्धि है। आत्मबुद्धि से मैं, परिवार, जाति, समाज, प्रान्त, देश, विदेश का भाव उत्तरोत्तर विस्तृत होते-होते सम्पूर्ण वसुधा मेरी अपनी है, यह भाव आ जाता है। यही ‘भूमा’ है। इसी सत्ता को सार्व-भौम सत्ता कहा है। इसी से सारे आनन्द निकलते हैं।

“ (अवाक्, भौचक्का-सा, मुँह बाए ही) महाराज! इसको पाऊँ कैसे ?”

“अपने को प्यार करो।”

“आपके पूर्व-कथन के अनुसार अपने को प्यार करने लगा हूँ, ऊपरी बनाव-श्रृंगार छोड़ दिए हैं। फ्रिज बेच दिया है। मोटर बेचने के लिए इश्तिहार अखबार में दे दिया है। कॉलिज दूर भी कितना है, सैर हो जाती है। घर भी छोटा ले लिया है। ध्यान-भजन करने का प्रयत्न भी करता हूँ। गीता पढ़ता हूँ। उन बातों पर आचरण के प्रयत्नों में भी बहुत लगा हूँ।”

“...शाबाश! तुम्हारी दृढ़-निश्चय की शक्ति तुम्हें तुम्हारे गन्तव्य तक ले जाएगी। परन्तु तुम अपने को रुपये में कितने पैसे प्यार करते हो और हाँ, कितने पैसे मुझे प्यार करते हो ?”

“...(प्रसन्न मुद्रा तथा आत्मीयता से) जी महाराज, आपका ध्यान तो मुझे हर समय ही रहता है। कई बार मैं यहाँ आया। आप ध्यान में ही बैठे मिले। चुपचाप बैठकर चला जाता था। आज हिम्मत करके चरणों में लेट ही गया। तब आपका ध्यान टूटा।”

“हाँ! बेटा जानता हूँ प्यार तो करने लगे हो मुझे भी। तभी तो मेरे संकेत पर चलने लगे। मेरे पास आते हो। मुझसे पूछ रहे हो। मेरे शरणागत भी होने के प्रयत्न में हो। ये ही शुद्धबुद्धि, सुबुद्धि के आगमन के लक्षण हैं। हाँ तो बच्चे, मैं पूछ रहा था ‘मुझे या अपने को रुपये में कितने पैसे प्यार करने लगे हो?’”

“जी... जी... जी...”

“बेटा! आम बोनो पर आम ही मिलते हैं और काँटे बोनो पर काँटे। क्यों मानते हो न? तुम क्या बोना चाहते हो ?”

“जी, आम और वे भी बढ़िया, कलमी, दसहरी और अलफैंजो। देसी चूसने वाले काठ-खट्ट नहीं।”

“तुम्हें तब बेटा, कहीं से अधिक शक्ति (रुपया) खर्च करके बढ़िया

से बढ़िया आम का पौध लाकर बड़े ही प्रयत्न से विशेषज्ञ माली से लगवाना होगा और उसकी सेवा करवानी होगी। क्यों ठीक कहा न? तब कहीं वर्षों में फल प्राप्त हो सकेंगे। अपनी किसी भी शक्ति को बिना विशेषज्ञ की सलाह के व्यर्थ खर्च करते रहोगे तो कभी भी सुन्दर, सुमिष्ठ, पौष्टिक फल पाने की आशा न कर सकोगे।

“अपनी सारी शक्ति— प्यार, स्नेह, प्रतिभा, उपाधि, बुद्धि, शिक्षा, धन, ज्ञान, समय— का सद्व्यय करना सीखना होगा। तुम्हें जैसे फल चाहिए वैसे पौधों में ही अपनी शक्तियाँ व्यय करनी होंगी।”

“जी! मैं इसी जीवन में सुख, शान्ति, आनन्द को सुन्दर फल के रूप में चाहता हूँ। किस प्रकार और कहाँ अपनी शक्ति का सद्व्यय करूँ? आप बताइए।”

“...बेटा! तुम भारतीय हो। माँ भारती संस्कृति को प्यार करो। ईश्वर प्रदत्त हमारी वही तो पूर्ण शक्ति है जो भारत के हर मानव में निहित है। भारत के कण-कण में वह विद्यमान है। कौन कहता है कि तुम किसी से भी शक्ति में कम हो। भारतीय संस्कृति शेरनी है। शेरनी का बालक शेर ही हो सकता है। गीदड़ या बकरा नहीं। याद रखो! विश्वास रखो! माँ भारती को पूर्ण श्रद्धा अर्पण करो।”

“(प्रसन्नता पूर्वक, उत्साहित और हैरान होकर) शेर की सन्तान! हैं! परन्तु महाराज! मैं तो डरता भी हूँ। अकेला तो तनिक-से अन्धरे में भी नहीं जा सकता। मर्द हूँ, इसलिए किसी से कहता भी नहीं। आज आप से कह रहा हूँ।”

“कोई बात नहीं, सब ठीक हो जाएगा। घबराओ मत।

कारज धीरे होत हैं, काहे होत अधीर।

समय पाय तरुवर फले, केतक सींचो नीर।”

“सब कुछ हो जाएगा। हाँ, बतलाओ एम.ए., पी.एच.डी. आदि के लिए कितना धन, कितना समय, कितनी अन्य शक्तियाँ तुम ने लगाई हैं। वे भी केवल अपनी ही नहीं, अपने माता-पिता, सम्बन्धी, अपनी स्त्री और

सन्तानों तक की भी। इनसे तुम्हें क्या मिला? फिर यह अनन्त सुख, अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द बिना कोई शक्ति— प्रेम, त्याग, संयम— खर्च किए कैसे मिल सकता है?”

“फिर कभी आना, आज बहुत भोजन तुम्हारी स्थूल, सूक्ष्म (मन-बुद्धि) देहों के लिए मिल गया है। इन्हीं बातों पर अब तो जा कर बार-बार विचार करो। इन पर जितना चिन्तन, मनन और आचरण करोगे उतना ही अधिक समझ पाओगे। और हाँ, पहली बातें भी साथ ही साथ मनन, आचरण में लानी होंगी। ऐसा न हो कि पहली बातें भूल ही जाओ। वे तो मूलबीज हैं। ये तो खाद मात्र हैं।”

...अच्छा अब जाओ, शाश्वत आनन्द के सन्धान में आगे बढ़ो। तुममें निष्ठा उत्पन्न हो गई है, चेष्टा आरम्भ कर दी है, अब जितनी चाह बढ़ेगी राह भी उतनी ही प्रशस्त मिलती जाएगी।

‘माँ’ को प्यार करो। ‘जीवात्मा’ को प्यार करो। अपने श्रद्धेय की वाणी पर आचरण पूर्ण श्रद्धा, निश्चय और विश्वास के साथ, पूर्ण प्रयत्न, पूर्ण शक्ति के साथ करो। पिता महाकारण-सच्चिदानन्द तुम्हारे संग सदा हैं। उनकी कृपा दृष्टि सर्वदा अपने प्रिय बालक पर रहती है।

- 3 -

तीसरे लेख में श्रीमती गुप्ता रोहतास को पत्र लिखती हैं। पिछली दोनों भेटों में जो-जो बताया, उसे पुनः याद दिलाते हुए वे आगे बढ़ती हैं। स्वयं से प्यार, फिर परिवार, समाज, राष्ट्र से प्यार होते-होते विश्व से प्यार हो जाने के बाद मनुष्य का अगला कार्य है ‘प्रेम-दान’ अर्थात् सबसे प्यार करना। यही मनुष्यत्व है, यही मनुष्य का धर्म है। सबसे प्यार करने वाले को चिरन्तन सुख, शान्ति, आनन्द प्राप्त होंगे ही।

प्रिय दादा 'रोहतास',

...पहले दिन प्रश्न उठा था 'मैं को प्यार करो' और 'भूल की मनो मिट्टी' अपने 'कारण' जीवात्मा के ऊपर से हटा दो। एक बात फिर से बतला दूँ— 'मैं' को प्यार करने का तरीका ही एक है और वह है, भूल की मनो-कणों मिट्टी काट कर निकाल बाहर फेंकना। तत्पश्चात् 'कारण' जीवात्मा का ऊपरी सूक्ष्म परिधान 'मन' ऐसा स्वच्छ, निर्मल हो जाता है जैसा सलिला, पूतपावनी गंगा-माँ का शरत् पूर्णिमा का जल। उसमें से तब 'कारण' स्पष्ट झाँकता दिखाई देता है। जैसे बल्ब में से बिजली की चमक। जहाँ कारण स्पष्ट हुआ कि काम हुआ। 'मैं' को प्यार करना आरम्भ हुआ।

यह 'भूल' क्या है? अपने 'महाकारण' की (आत्मा के पिता परमात्मा की) विस्मृति। 'विस्मृति' का कारण स्थूल देह का सुख चाहना है। स्थूल देह केवल सुख चाहता है और इसी सुख की चाह में 'विभ्रान्ति' आरम्भ हो जाती है। तब हम 'स्थूल और सूक्ष्म' देहों की नश्वरता को कतई भूल जाते हैं और इन्हें माँजने की बजाए भूल-भ्रान्ति (मोह-स्वार्थ) की मैल को देख तक भी नहीं पाते। जब नित्य माँजने वाले लोटे को और अपने कभी न माँजने वाले लोटे को संग-संग देखते हैं तब कहीं याद आती है। किन्तु तब तक अपने लोटे पर इतनी मैल जम चुकी होती है कि माँजकर चक्-चक् कर सकना असम्भव सा प्रतीत होता है। किन्तु 'मनुष्य-जीव' में वह शक्ति निहित है कि असम्भव शब्द का उसके पास अस्तित्व ही नहीं। वह अपने में 'स्वयं महाकारण' अनन्त शक्ति है, पूर्ण शक्ति है। तब उसके लिए असम्भव क्या? यदि हम स्वार्थी होकर अपना भला चाहते हैं तो थोड़ा-सा अधिक विस्तार से भला माँग लें तो क्या हानि है। हम यदि नित्य कहें सब का भला करो भगवान, प्रेम-प्यार की रीत सिखा दो, ऊँच-नीच का भेद मिटा दो, होवे प्रेम का दान। बस यही प्रेम-दान ही अपने स्वार्थ को परमार्थ में बदल देता है और यहीं से मोह-स्वार्थ की मिट्टी— मैल की सफाई आरम्भ हो जाती है और शायद तुम्हें यह पता भी नहीं है कि यह 'प्रेम-दान' की राख केवल सामान्य राख-मिट्टी का काम नहीं करती, यह सीधा तेजाब का काम करती है। परन्तु इसके लगाने से साधारण तेजाब की भाँति अपनी कुछ भी हानि नहीं होती। उल्टा अपना शरीर व मन रूपी शीशा और भी स्वच्छ,

निर्मल हो उठता है। मोती का अपना गुण क्या है, उसकी चमक। मनुष्य का अपना गुण क्या है, उसका 'मनुष्यत्व'। बस इसी एक 'प्रेम-दान' से ही मनुष्यत्व का प्रकाश फैलने लगता है। जैसे रात्रि के पश्चात् आकाश में लालिमा फैलने लगती है तब निश्चय सूर्योदय का विश्वास हो जाता है। 'स्वार्थ' श्यामघन है और प्रेम-दान घनश्याम। 'मन के मन्दिर में बिठा ले मूर्ति घनश्याम की', तब अनायास ही वह गा उठता है। श्यामघन (दुःख का बादल) ही तब सुन्दर मनुष्यत्व— घनश्याम नाम से बोध होने लगता है।

परम शक्ति भारतीय संस्कृति-माँ को नव जीवन देने वाले परम पूज्यपाद आचार्य शंकर ने किशोरावस्था में ही अनुभव कर लिया था— मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुष संश्रयः दुर्लभः। मनुष्यत्वं या मैं-बोध के पश्चात् 'मैं' को शरीर क्यों मिला, कहाँ से यह आया, कहाँ जाएगा— ये प्रश्न उठने लगते हैं। और मैल की कटाई द्रुतगति से होने लगती है।

...तुम यदि अपने आप को ठगाना नहीं चाहते तो अर्थ के दास न बन कर अपने को अर्थ के प्रभु बना लो। स्वामी बनते ही तुम्हें भान होने लगेगा अर्थ क्या वस्तु है उसके गोरख धन्धे में दासवत् चक्कर लगाने से क्या हानि है और इसको दूसरा नाम 'प्यार' दे देने से क्या लाभ है। मुझे समझाने का कोई प्रयोजन नहीं। तुम तो स्वयं ही ये सब बातें नित्य ही अपनी परम-प्रिय सन्तानों— विद्यार्थियों को सिखाते-पढ़ाते हो।

अर्थ या शक्ति का आदान-प्रदान तो आप जानते ही हैं, वह क्या है। आदान-प्रदान ही जीवन है— यह बन्द हुआ नहीं कि जीवन मृत्यु में परिवर्तित हुआ। आदान-प्रदान ही अर्थ युग में 'अर्थ व्यय' (शक्ति-व्यय) है। अब सद्व्यय और असद्व्यय का अर्थ तुम्हें क्या समझाऊँ? केवल देह भाव से शक्ति का व्यय करना असद्व्यय है, आत्मा के विकास के लिए व्यय करना 'सद्व्यय'। तुम ने जनवरी, 1964 में यह प्रश्न किया था। सो कुछ कहना ही होगा। 'सद्व्यय' माने शुभ-कार्य में खर्च। शुभ-कार्य क्या और अशुभ-कार्य क्या, यह निर्णय बुद्धि करती है। 'सद्व्यय' मन रूप अपने दास से, और फिर मन शरीर-रूप दास (दस इन्द्रियों) से उसी के अनुरूप चलने का आदेश देता है। सद्व्यय और शुद्धात्मा एक ही है। 'शुद्धात्मा', कारण-

जीवात्मा एक ही हैं— दो नामों से परिचित। कारण, महाकारण में विशेष भेद नहीं रहता— पिता-पुत्र एक, प्रभु-ईसा ने कहा था। इस सद्बुद्धि के आदेश की अवज्ञा करने की शक्ति न बुद्धि में है और न शरीर में। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है :

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ (3:42)

उत्तरोत्तर 'आत्मा' की शक्ति सब से बलवान है। 'सुबुद्धि'-लाभ होने पर मनुष्य उसी के आदेश के अनुसार आचरण करता है और जगत-व्यवहार में वह अर्थ के रूप में शक्ति का आदान-प्रदान नहीं करता; केवल प्यार, शुद्ध-प्रेम के रूप में करता है। वहाँ सेवा आ उपस्थित होती है।

हाँ! तो 'दादा' रोहतास, दादा का अर्थ जान गए? मनुष्यत्व है केवल देने ही देने का भाव लिए शरीर में शक्ति माँ का रहना। पशु यह नहीं जानता। मनुष्य जानने की शक्ति लेकर भी न जाने तो वह तो पशु से भी गया गुजरा नहीं तो क्या है ?

...'भूल' का सुधार होगा सद्बुद्धि द्वारा विवेक-ज्ञान लाभ करके, उस ज्ञान का आचरण करके। सो समझे, हमारी निहित शक्ति क्या है, यही आचरण ही तो।

आचरण करवाना या करना 'आचरण करो' शब्दों द्वारा बोलकर सिखाया नहीं जाता। सद्बुद्धि द्वारा प्राप्त विवेक-ज्ञान की कलम से इसी मनुष्य-जीवन के शुद्ध, लाल रुधिर से प्राणों के अन्तिम पृष्ठ पर स्वयं लिखते रहने से ही कुछ किया या सिखाया जा सकता है डॉक्टर— दा... दा...

यही सुख, शान्ति है, यही विवेक-वैराग्य है, यही ज्ञान-भक्ति है और यही प्रेम-समाधि।... चाह-को-राह। निश्चय है। 'मैं को प्यार करो', सुख-शान्ति, आनन्द दासवत् पीछे-पीछे रहेगा।

या देवी सर्वभूतेषु आनन्द रूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

प्रस्तुति : ईश्वर चन्द्र

श्री 'म' ट्रस्ट के प्रकाशन

1. श्री म दर्शन

बंगला संस्करण— भाग 1 से 16— स्वामी नित्यात्मानन्द

श्री म दर्शन महाकाव्य में ठाकुर, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द तथा अन्यान्य संन्यासी एवं गृही भक्तों के विषय में नूतन वार्ताएँ हैं। और इसमें है कथामृतकार श्री 'म' द्वारा 'कथामृत' के भाष्य के साथ-साथ उपनिषद्, गीता, चण्डी, पुराण, तन्त्र, बाइबल, कुरान आदि की अभिनव सरल व्याख्या।

2. श्री म दर्शन

हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 16

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता द्वारा बंगला से यथावत् हिन्दी-अनुवाद।

3. श्री म दर्शन

अंग्रेजी संस्करण— ('M'— The Apostle and the Evangelist)

श्री 'म' दर्शन ग्रन्थमाला का अंग्रेजी अनुवाद प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता ने 'M'— The Apostle and the Evangelist नाम से किया है। ट्रस्ट के पास प्रथम ग्यारह भाग तो उपलब्ध भी हैं। शेष पाँच भाग अभी मुद्रण-प्रकाशन-प्रक्रिया में हैं।

4. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Centenary Memorial

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता और पद्मश्री डी०के० सेनगुप्ता द्वारा अंग्रेजी में सम्पादित वृहद् ग्रन्थ, जिसमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण, 'कथामृत', श्री 'म' और 'श्री म दर्शन' पर श्रीरामकृष्ण मिशन के संन्यासियों समेत अनेक गणमान्य विद्वानों के शोधपूर्ण लेख हैं।

5. A Short Life of Sri 'M'

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के मन्त्र-शिष्य और श्री म ट्रस्ट के फाऊंडर सैक्रेट्री प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा अंग्रेजी में लिखी गई श्री म की संक्षिप्त जीवनी।

6. Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा लिखित श्री म के जीवन तथा 'कथामृत' पर शोध प्रबन्ध

7. श्री श्री रामकृष्ण कथामृत

हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 5

श्री महेन्द्रनाथ गुप्ता ने ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के श्रीमुख-कथित चरितामृत को अवलम्बन करके ठाकुरबाड़ी (कथामृत भवन), कोलकता-700 006 से 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' का (बंगला में) पाँच भागों में प्रणयन एवं प्रकाशन किया था।

इनका बंगला से यथावत् हिन्दी अनुवाद करने में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता ने भाषा-भाव-शैली— सभी को ऐसे सरल और सहज रूप में संजोया है कि अनुवाद होते हुए भी यह ग्रन्थमाला मूल बंगला का रसास्वादन कराती है।

8. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

English Edition

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के हिन्दी-अनुवाद से प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा कथामृत का अंग्रेज़ी-अनुवाद। चार भाग प्रकाश में आ चुके हैं। पाँचवाँ भाग प्रकाशनाधीन है।

9. नूपुर

वार्षिक स्मारिका

श्री म ट्रस्ट के संस्थापक और हम सब के पूजनीय गुरु महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी के 101वें जन्मदिन पर उनकी स्मृति में 'नूपुर' नाम से सन् 1994 ईसवी में एक स्मारिका का प्रकाशन हुआ था। उसी स्मारिका ने अब वार्षिक पत्रिका का रूप ले लिया है, जिसमें

अन्य बातों के अतिरिक्त ठाकुर रामकृष्ण परमहंस, माँ सारदा, श्री म, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी नित्यात्मानन्द, 'श्री म दर्शन' आदि के बारे में प्रचुर सामग्री रहती हैं। साथ ही कथामृतकार श्री म के द्वारा 'श्री म दर्शन' में कही उन बातों को भी प्रकाश में लाया जाता है, जो 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' में नहीं हैं।

